मानव जीवन का सुखमय सफर

परम संत कैप्टन लाल चन्द जी महाराज द्वारा रचित

पता :
जयमल सिंह, एडवोकेट
कोठी नं. 332, सैक्टर 15-A
हिसार-125001 (हरियाणा)
☎ 01662-244725

सर्वाधिकार सुरक्षित (जनवरी, 2004)

इस पुस्तक का कोई भी अंश किसी भी माध्यम से
प्रकाशक की लिखित अनुमति के बिना प्रकाशित करना
अविधिमान्य होगा।

मूल्य : 10/- रूपये

अब तक प्रकाशित पुस्तकों की सूची

1. लाल कमल (अप्रैल, 2003)	1000 प्रतियां
2. सहज योग (अगस्त, 2003)	2000 प्रतियां
3. सुखी जीवन का रहस्य (अक्टूबर, 2003)	3000 प्रतियां
4. मानव धर्म एवं अध्यात्म ज्ञान (जनवरी, 2004)	4000 प्रतियां
5. मानव जीवन का सुखमय सफर (मार्च, 2004)	4000 प्रतियां
6. मनुष्य का कर्त्तव्य और धर्म (जून-2004)	4000 प्रतियां
7. प्रश्नोत्तरी ज्ञान गंगा (अक्टूबर-2004)	4000 प्रतियां
8. मेरी धार्मिक खोज (मई-2005)	4000 प्रतियां

विषय सूची

क्रमांक	विषय	पृष्ठ संख्या
	प्राक्कथन	
	भूमिका	
1.	ब्रह्मचर्य आश्रम	1
2.	गृहस्थ आश्रम	5
3.	वानप्रस्थ आश्रम	12
4.	सन्यास आश्रम	15
5.	अर्थ (धन)	23
6.	धर्म	31
7.	काम	44
8.	मोक्ष	47
9.	मनुष्य क्या है ?	53
10.	मनुष्य की समस्याएं	59
11.	मनुष्य द्वारा तलाश	64
12.	मनुष्य का सच्चा हितैषी	66
13.	मेरे जीवन का अनुभव	70
14.	नाम या साधन का नया अनुभव	78
15.	मानवीय गुण	82

।। राधास्वामी ।।

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक '**मानव जीवन का सुखमय सफर**' मेरे विनम्र आग्रह पर **परम सन्त हजूर महाराज लालचन्द जी** द्वारा लिखी गई एक बहुमूल्य पुस्तक है। इस पुस्तक का एक-एक पृष्ठ ऐसा है जैसे मानों एक-एक फूल चुन-चुन कर रखा गया हो। जैसे फूल अपनी खुशबू से महक छोड़ जाता है, उसी प्रकार यह पुस्तक आपके जीवन में एक नई खुशबू भर देगी - ऐसा मेरा विश्वास है। इस पुस्तक में शास्त्रीय धर्म को आधुनिक समय के अनुसार ढालने की कोशिश की गई है और अत्यन्त सरल शब्दों में यह बताया गया है कि मनुष्य अपने गृहस्थ जीवन में ही सभी धर्मों का पालन करता हुआ, स्वर्गमय जीवन जीता हुआ उस परम आनन्द व शान्ति के धाम को यानी मोक्ष का निर्वाण को कैसे पा सकता है ? इस पुस्तक में जो कुछ भी लिखा गया है, वह सब अनुभव के आधार पर व आज के समय की मांग के अनुसार लिखा गया है।

जब मैं अपने परम आराध्य, श्रद्धेय व मालिक स्वरूप अपने गुरु महाराज जी के सम्पर्क में आई और जब मैंने इनकी कथनी व रहनी देखी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि आज के इस युग में भी कबीर व रैदास जैसे परम सन्त विद्यमान हैं। क्योंकि मैंने आज के सभी महापुरुषों को बड़े ठाठ-बाठ से जीवन व्यतीत करते हुए देखा है और जब मैंने गांव-गांव में इन्हें साधारण व्यक्ति की तरह जीवन व्यतीत करते हुए, सत्संग कराने के लिए बस या रेल से यात्रा करते हुए देखा तो मेरे आश्चर्य की कोई सीमा ही नहीं रही। क्योंकि यह सब मेरी आशा से एकदम विपरीत था। भला यह कौन जान सकता है कि एक ऐसा साधारण व्यक्ति इतना बड़ा सन्त हो सकता है जो हर समय उस ब्रह्म में लीन रहता है। जिस वस्तु की तलाश में मैं

12–13 वर्ष तक भटकती रही, वह इनके सम्पर्क में आते ही कब और कैसे प्राप्त हो गई, मैं जान ही नहीं सकी। बस जब भी इनके पास बैठती थी, ऐसा जान पड़ता था कि मैं शान्ति के सागर में बैठी हुई हूं। इनसे जो आत्मिक प्यार मिला और जो बहुमूल्य रत्न प्राप्त हुआ, उसका तो मैं वर्णन कर ही नहीं सकती हूं। प्रेम व शान्ति के तो ये मानों साक्षात् भण्डार हैं। आंखें उस राम–नाम के नशे में इतनी चूर कि मन करता है इन्हें निहारते ही रहें और वाणी में इतना अमृत घुला हुआ है कि जिसको सुनने के लिए कान हमेशा लालायित रहते हैं। इनको देखकर मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो साक्षात् मालिक ही इनके रूप में उतर आया है या यूं कहिए कि ये साक्षात् मालिक का ही स्वरूप है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। वैसे तो हर शिष्य को अपने गुरु का स्वरूप शायद इसी प्रकार लगता होगा, परन्तु मैं यहां व्यक्तिगत न कहकर यह स्पष्ट करना चाहती हूं कि इनके अन्दर उस राम नाम या तत्व ज्ञान की धारा हर समय प्रवाहित होती रहती है और जो भी व्यक्ति चाहे वह कितना भी दुखी व परेशान क्यों न हो, यदि वह सच्चे मन से इनके पास दर्शनार्थ आता है तो वह इनकी Radiation से आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता – ऐसा मैंने अनुभव किया है। जैसे बिजली में कनैक्शन रहता है तो उसमें करन्ट बना रहता है, उसी प्रकार इनके अन्दर उस राम नाम का करन्ट हर समय मौजूद रहता है। यही कारण है कि जो भी इनके सम्पर्क में आता है तो वह इनके प्रेम पूर्ण व ज्ञानमय छीटों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। मेरे लिए तो यह साक्षात् मालिक का ही स्वरूप है और मेरे पास इनका गुणगान करने के लिए शब्द ही नहीं है जैसे –

किस मुख से तेरी महिमा गाऊं, तू सत् पुरुष अविनाशी है।
चेतन घन विमल अमल निर्मल, कह उठा परम सुखराशी है।

और कुछ पंक्तियां अनायास ही मेरे मुख से ऐसे निकल पड़ती है –

सादा जीना, सादा खाना, सादा वाना और ऊंचे विचार।
दुनिया में रहकर भी हैं ये दुनिया से पार।
जैसी कथनी वैसी करनी, यह है इनका मूल विचार।
जो भी आये गले लगाए, प्रेम का है ये अथाह भण्डार।।
वाणी में है अमृत इनके, कर देते हैं सबको निहाल।
अपना भाग्य सराहे वही, जो कर लेता है इनका दीदार।।
कैसे गुणगान करें हम इनका, महिमा है इनकी अपरम्पार।
मनुष्य रूप में आए हैं ये साक्षात् मालिक का अवतार।
जीवन का नव दीप जलाकर, कर देते हैं लोगों का बेड़ा पार।
बार–बार मैं करू दण्डवत्, मुझे कर दिया इन्होंने भव से पार।।

और इस पुस्तक को प्रकाशित करवाने में अपना अपूर्व सहयोग देने वाले मैं अपने स्नेहिल भ्राता श्री वकील जयमल सिंह जी को भला कैसे भूल सकती हूं। क्योंकि यह सब कार्य उन्हीं की छत्रछाया में सम्पन्न हुआ है। अत: मैं तहदिल से इनका धन्यवाद करती हूं।

इसके साथ ही पुस्तक के प्रकाशन में अपना आर्थिक योगदान देने वाले अपने स्नेही बन्धु सुपरिटैन्डैन्ट इन्जीनियर जिले सिंह सांगवान व जे.सी. गुप्ता (5, Ireland, West Brownwich, U.K.) के प्रति भी मैं अपना आभार प्रकट करना चाहती हूं क्योंकि जैसे कहा गया है – **'अर्थ प्रधान विश्व कर राखा'** अर्थात् अर्थ के बिना इस दुनिया का कोई भी कार्य सम्भव नहीं है। तो धन के विषय में हमारे लिए ये साक्षात् कुबेर का ही स्वरूप है। अत: एक बार पुन: इनका धन्यवाद करती हूँ।

डॉ. कमला
प्राध्यापिका
एम.एम. कॉलेज, फतेहाबाद
दूरभाष : 01667–225520

भूमिका

कवि विवेक एक नहीं मोरे।
सत्य कहूं लिखी कागज कोरे।। (तुलसी)

अर्थात् मैं अपने अन्दर कोई गुण नहीं देखता हूं और न ही मेरे अन्दर लिखने की कोई योग्यता है और यदि दूसरे लोग मुझमें कुछ देखते हैं तो उसका मुझे कुछ मालूम नहीं है। जैसे किसी सुन्दर स्त्री को देखकर कोई आकर्षित होता है तो उस स्त्री को इसका कोई ज्ञान नहीं होता है, क्योंकि यह उसका प्राकृतिक गुण है। तो मैं अपने आपको इस लेखन शैली के लिए अयोग्य समझता हूं। परन्तु गुरु कृपा से उस तत्व ज्ञान या नाम के अनुभव में हमेशा मस्त रहता हूं और 1962 से अपने गुरु महाराज जी के ज्ञान को अपनी योग्यता अनुसार समझ कर व अनुभव करके उनके आदेशानुसार सत्संग देता आ रहा हूं। परन्तु इन सत्संगों का मेरे पास कोई रिकार्ड नहीं था। जब यह डॉ. कमला मेरे सम्पर्क में आई तो बुद्धिजीवी होने के नाते इसने यह महसूस किया और कहा कि आप जो यह सत्संगों में ज्ञान दे रहे हैं यह भावी मनुष्य जाति के लिए विशेष पथप्रदर्शक की वस्तु है और साधकों के लिए उन्नतिवर्द्धक है। अत: इसने मेरे सत्संगों का रिकार्ड, ओडियो, विडियो कैसेट के रूप में रखना शुरू कर दिया और कुछ सत्संगों को '**सहज-योग**' नामक पुस्तक में लिपिबद्ध करके, कुछ सज्जनों के सहयोग से इसे प्रकाशित करवा दिया।

मेरा यह पुस्तक लिखने का स्वयं का कोई विचार नहीं था, क्योंकि मैं यह जानता हूं कि यह ज्ञान लिखा या बताया नहीं जा सकता है और जो लिखा जाता है या बताया जाता है, वह सच्चाई नहीं है। सच्चाई तो केवल किसी हाजिर, पूर्ण अनुभवी महापुरुष के सत्संग में बैठकर ही अनुभव की जा सकती है। परन्तु मेरी परम शिष्या डॉ. कमला की यह प्रबल इच्छा थी कि मैं अपना कुछ अनुभव पुस्तक के रूप में लिखूं और मैं न चाहते हुए भी यह लिखने को मजबूर हूं, क्योंकि यह डॉ. कमला 'शब्द और प्रकाश' की योगी है। इसकी इच्छा शक्ति बहुत ही प्रबल है, जैसे सन्तों की होती है। तो शायद यह इसकी इच्छा का ही परिणाम है या हो सकता है कोई और कारण हो जो मुझे ज्ञात नहीं।

मैंने इस पुस्तक में अपने परम पूज्य गुरु पण्डित फकीरचन्द जी के ज्ञान को अनुभव करके सच्चाई बताने की कोशिश की है तथा धर्म के विषय में लोगों के भ्रम, शंका व अज्ञान को दूर करने का प्रयास किया है। यदि इस पुस्तक के पढ़ने से धर्म-कर्म के विषय में किसी के भ्रम व शंका दूर हो जाते हैं तो मैं अपने आपको धन्य समझूंगा।

आपका हितैषी,

कैप्टन लाल चन्द
गांव दांदू, जिला चुरू
(राजस्थान)
दूरभाष : 01562-283121, 283521

(1)

ब्रह्मचर्य आश्रम

प्राचीन काल में मनुष्य जीवन की आयु के अनुसार उसे चार आश्रमों में विभाजित किया गया था, जिसमें पहले 25 वर्ष ब्रह्मचर्य जीवन के लिए, 25 से 50 वर्ष तक गृहस्थ जीवन के तथा 50 से 75 वर्ष तक वानप्रस्थ जीवन के तथा अन्तिम 75 से 100 वर्ष तक सन्यास जीवन के निश्चित किए गए थे। जब बच्चा कुछ बड़ा हो जाता था तो उसे गुरुकुल में समय के अनुसार शिक्षा दी जाती थी, वहां ब्रह्मचर्य का विशेष पालन किया जाता था। मनुष्य शरीर को स्वस्थ रखने व मन को समता में रखने का मुख्य कारण शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य है। वैसे यह प्राकृतिक विषय है। हर काम का समय होता है। यदि बच्चों को शुरू से ही इस विषय में सही शिक्षा दी जाए तो उनका शरीर और मन स्वस्थ रह सकते हैं। बाद में शिक्षा में, विज्ञान में यह विशेष उन्नति कर सकते हैं। मनुष्य में यह वीर्य ही महान् शक्ति है।

यह वीर्य मनुष्य में क्या वस्तु है ? इसको ऐसा समझिए कि मनुष्य-शरीर भोजन से बनता है, भोजन पृथ्वी से उत्पन्न होता है, पृथ्वी की गर्मी और सूर्य के प्रकाश से ही पृथ्वी खाद्य सामग्री उत्पन्न करती है। यदि सूर्य का प्रकाश न हो तो अन्न इत्यादि उत्पन्न नहीं हो सकते। अब यह बात साफ हो गई कि सूर्य के प्रकाश से ही मनुष्य का भोजन बनता है। एक दिन भोजन करने से एक बून्द खून की बनती है। जब 40 बून्द खून की बनती है, तब एक बून्द उर्जा की बनती है। 40 बून्द उर्जा की बनने से एक बून्द वीर्य की किसी खास आयु तक

बनती है। यदि यह वीर्य सन्तान उत्पत्ति के लिए प्रयोग में लाया जाये तो मां जैसी चाहे वैसी ही सन्तान पैदा कर सकती है। यदि स्त्री पुरुष स्वाद के लिए यह वीर्य खो दें, जैसा आजकल हो रहा है तो तरह-तरह की बीमारी और मानसिक रोग पैदा होंगे। यह वीर्य ही मनुष्य में विशेष शक्ति है। जो योगी लोग अपने अन्दर साधन व योग में प्रकाश देखते हैं, वह बाहर से कुछ नहीं आता है। उनकी सुरत खोपड़ी में वीर्य से जाकर मेल खाती है और वे अपने अन्दर बहुत तेज सफेद रंग के प्रकाश का अनुभव करते हैं, यही आत्म तत्व कहलाता है। इसका अन्दर अनुभव तेज प्रकाश और आनन्द है, जो अवर्णनीय है। अपने अन्दर प्रकाश के अनुभव के आनन्द का उदाहरण अच्छा तो नहीं है, परन्तु बताना आवश्यक है जो इस प्रकार है - स्त्री-पुरुष जिस सम्भोग का आनन्द दो या तीन मिनट में अनुभव करते हैं, उस आनन्द को प्रकाश का योगी दो-तीन घण्टे तक अपने अन्दर अनुभव कर सकता है। बाहर का जो आनन्द हम अपने जीवन में अनुभव करते हैं, वह सब इस आत्मा का ही आनन्द है। यह शास्त्रों में जो ब्राह्मण की महिमा बताई गई है, यह उन सज्जनों की है जो अपने अन्दर योग में प्रकाश का अनुभव करते हैं और अब भी प्रकाश का साधन करने वाले महापुरुष की वही महिमा है।

आप मेरा भाव समझ गए होंगे कि यदि स्त्री-पुरुष इस ध्यान की विधि को सीख कर ध्यान करें तो इस सांसारिक विषय-वासना से बहुत ऊपर उठ सकते हैं और उनका जीवन कुछ और ही बन जाता है। यही बात गीता में भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को कही है कि हे अर्जुन! जो काम-क्रोध के आवेग से ऊपर उठ जाता है तो उसके लिए कोई पाप-पुण्य नहीं है। वही बात इस ध्यान की है, जिसे हमारे सब महापुरुषों ने कहा है। जैसे कृष्ण, बुद्ध, महावीर, पतंजलि, कणाद्, शंकर आदि

सभी ने इसी की तरफ संकेत किया है। तो ब्रह्म क्या है? सूर्य और साधन में सफेद रंग का प्रकाश और ब्राह्मण कौन हुआ? जो ब्रह्म में आचरण करता है, यानी अपने अन्दर प्रकाश का अनुभव करता है। प्रकाश, वीर्य की शक्ति जब सुरत (विशुद्ध आत्मा) से मिलती है, तब प्रकाश का अनुभव होता है। वैसे अध्यात्म ज्ञान के लिए जितने भी साधन हैं, सबमें ब्रह्मचर्य की अति आवश्यकता है। जैसे कहा गया है –

''ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्य नाश ही मृत्यु''

यह अनुभव मेरे प्रति विश्वास रखने वाले कई सज्जन और बहन-बेटियों का है, जो यह समझते हैं कि उनके अन्दर का प्रकाश मैने खोला है। इनमें से तीन तो आजकल मेरे को रोज अपना साधन करके फोन पर अनुभव बताते हैं और जिस दिन उनका साधन ठीक न बने जैसा वह चाहते हैं, तो बहुत दुखी हो जाते हैं और मेरे से मिलना चाहते हैं। वैसे मैंने समाधि लगाने में कोई मदद नहीं की है। यह सब आपकी लगन और आपके विश्वास का कारण है, परन्तु वे ऐसी बात सुनते ही नहीं है।

एक बार की बात है, जब मैं गुहाटी (आसाम) में भर्ती ऑफिसर था। वहां चिरागुदीन नाम का एक अमीर मुसलमान रहता था उसने मुझे कई बार कहा कि ''मैंने इसलाम धर्म के अनुसार नमाज, रोजा, खैरात, जकात, हज इत्यादि सब कुछ किया है, परन्तु मन को शान्ति या अमन नहीं है। मैंने अपने गुरु महाराज पण्डित फकीरचन्द जी को यह बात लिखी कि यहां एक बहुत अमीर और नेकदिल मुसलमान है, जो रूहानियत (आत्म-ज्ञान) चाहता है। क्या मैं उसे आपके पास भेज दूं? उन्होंने उत्तर दिया कि तुम ही उसको नाम दे देना। यहां, जब जरूरत हो देख लेना। मुझे कुछ मालूम भी नहीं था कि क्या नाम दूं और कैसे बताऊं? वह आदमी बहुत चरित्रवान् था।

मैंने उसको सहज ध्यान की विधि बता दी और इसलाम धर्म के अनुसार एक छोटा सा कलमा पढ़ा दिया। उसने कोई 15 या 20 दिन उसका साधन किया तो उसे बहुत गहरे सफेद रंग के प्रकाश का अनुभव होने लगा। बाद में मैंने उसे अपने गुरु के पास होशियारपुर (पंजाब) भेज दिया। यह बात 1972 या 73 की है। उसका कई साल तक मेरे से मिलाप रहा।

मैंने खुद ने तो शुरू से ही अलख, अगम और अनामी का साधन किया है यानी सार शब्द का साधन, जो अपने आप होता रहता है, मैं कुछ नहीं करता। परन्तु आपको इन प्रकाश के अनुभवी सज्जनों के विषय में बता रहा हूं कि यह चरित्र का विषय है और मनुष्य की प्रकृति के अनुसार यह अनुभव होते हैं। किसी को इष्ट के स्वरूप का, किसी को प्रकाश का, किसी को शब्द व प्रकाश दोनों का तो किसी को केवल शब्द का। मुख्य वस्तु सार शब्द है। यह सुरत-शब्द का साधन इस युग में **'नाम'** है और कुछ भी करने धरने की बात नहीं, सब कुछ अपने आप होता जाता है। बात साधक की इच्छा की है। जैसी इच्छा, संस्कार और प्रकृति है, वैसा ही अनुभव होगा। साधन के लिए मुख्य बात ब्रह्मचर्य की है और भी मनुष्य की प्रकृति के अनुसार बहुत सी बातें यम व नियम की हो सकती हैं। परन्तु गुरु कृपा से मुझे साधन में कोई कठिनाई या रूकावट आज तक नहीं आई, कल का कुछ कहा नहीं जा सकता है।

इस ब्रह्मचर्य की शक्ति का लाभ उठाने के लिए विद्या अध्ययन करने में या वैज्ञानिक खोज करने में व्यस्त रहना जरूरी है, यानी मन में उच्च विचार रखे जायें। ध्यान योग से काम व क्रोध के विकार से ऊपर उठा जा सकता है। ध्यान योग किसी पूर्ण अनुभवी से सीखा जाए। हमारे ऋषियों के द्वारा बताए गए जीवन के चार आश्रमों –

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास में जो पहले तीन आश्रमों का अनुभव रखता है, वही सन्यासी सबका मार्ग दर्शन कर सकता है। जो गृहस्थ जीवन का अनुभव ही नहीं रखता, वह गृहस्थियों का मार्ग दर्शन नहीं कर सकता है।

(2)

गृहस्थ आश्रम

ब्रह्मचर्य आश्रम के पश्चात् दूसरा आश्रम गृहस्थ आश्रम है जो विशेष महत्व रखता है। समाज में गृहस्थ जीवन के लिए इस विवाह संस्कार को पूरा करने के अनेक ढंग व तरीके हैं, परन्तु अर्थ सबका एक ही है कि विवाह से पहले जिस लड़के-लड़की का आपस में कोई सम्बन्ध या रिश्ता नहीं होता, उन्हें पति-पत्नी के पवित्र बन्धन में बांध कर इस गृहस्थ जीवन यात्रा को मिल कर चलाने का आदेश दिया जाता है। परन्तु देखने में यह आता है कि बहुत ही कम लोग इस गृहस्थ जीवन को सफल बना पाते हैं। मैं 1962 से यह सत्संग की सेवा करता आ रहा हूं। मेरे अनुभव में ऐसा आया है कि लोगों का गृहस्थ जीवन, जो एक स्वर्ग की तरह होना चाहिए था, वह दुख, तकलीफ व कलह का घर बन गया है। अधिकतर पति-पत्नी का जैसा प्यार होना चाहिए, वैसा देखने में नहीं आता है। अतः विवाहित जीवन का जैसा आनन्द, सुख, प्यार होना चाहिए वैसा नहीं है। अब सवाल यह है कि मैं इस विषय में क्या सलाह या राय देता रहता हूँ?

मैंने एक '**सुखी जीवन का रहस्य**' नामक पुस्तक लिखी है। उसमें मैंने अपने अनुभव के आधार पर बताया है कि पति-पत्नी सन्तान को सन्तान के विचार से पैदा करें। यदि इस पुस्तक के संस्कार लेकर मनुष्य सन्तान उत्पन्न करेगा तो भी आज हम गृहस्थ जीवन में, सामाजिक जीवन में, राजनैतिक जीवन में व दुनिया के किसी भी क्षेत्र में मनुष्य में कमी देख रहे हैं, इसके सुधार का लाभ होगा और घरों में अति आनन्द व प्रेम का जीवन जीते हुए इसी लोक में ही हम स्वर्ग जैसे प्यारे, मीठे, सुख, शान्ति व आनन्द का अनुभव कर सकेंगे। कारण लड़के-लड़कियों को जन्म से लेकर अब तक अपने घर व माता-पिता से सुन्दर व बहुत अच्छे संस्कार मिलेंगे। दूसरा, पति-पत्नी के आपस में प्रेम, समझ, विवेक व ज्ञान के लिए ध्यान योग के साधन का तरीका है। जहां पति-पत्नी दोनों ध्यानी होंगे, उस घर में हर तरह शान्ति, प्रेम व खुशी होगी। इसका कारण यह है कि वे ब्रह्मचर्य की शक्ति विषय-भोग में अधिक नष्ट नहीं करेंगे और यह जो Sex का आनन्द है, उसे अपने ध्यान के समय घण्टों अन्दर ध्यान में ले जाकर मस्ती, खुशी, उमंग व प्रेम में दिन भर रहते हुए अपना काम करेंगे।

कहने का भाव यह है कि मनुष्य में खुशी, प्रेम व उमंग वाली शक्ति यह वीर्य ही है। इसको स्वाद के लिए विषय भोग में जो पति-पत्नी नष्ट कर देंगे, उनका दिमाग थोथा (खाली) हो जायेगा, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जायेगा व उन्हें गुस्सा या क्रोध अधिक आयेगा, जिससे घर में कलह या लड़ाई-झगड़ा होगा। पति-पत्नी में पहले जैसा प्रेम नहीं रहेगा और वे एक दूसरे की कमजोरियों को देखने लग जायेंगे व चरित्र पर शक करेंगे। यानी उनकी बुद्धि मलिन हो जायेगी। इसके विपरीत जो पति-पत्नी ध्यान-योग के साधक होंगे, उनकी समझ, विवेक बुद्धि कुछ और ही होगी। यदि पति-पत्नी में कुछ कमी भी

होगी तो वे प्रेम से आपस में एक दूसरे को समझा देंगे और फिर भी कमी नजर आयेगी तो वे विवेक से समझ जायेंगे कि यह इसके वश की बात नहीं है, कोई पीछे के संस्कार ही कमजोर हैं, जो समय पर अपने आप ठीक हो जायेंगे। यानी वह अपने प्यारे का मन दुखाना महा पाप समझेगा। 'अहिंसा परमो धर्मः' वाली बात रखेगा। काम और क्रोध के वेग से मेरा यह भाव है कि जब हम एक-दूसरे से सुख की इच्छा या कामना रखते हैं और उस कामना या इच्छा में कोई रूकावट आती है तो क्रोध आ जाता है जिसे गीता में ऐसा कहा है -

''कामात् क्रोधोडभिजायते''

परन्तु 'ध्यान' (योग) करने वाले को यह बात समझ में आ जाती है कि जो सुख या आनन्द वह पति या पत्नी में समझ रहा था, वह तो खुद अपने ही अन्दर है, उसे मैंने अपने ध्यान में अनुभव कर लिया है। ऐसी स्थिति आने पर जब आपकी पत्नी कोई ऐसी बात करती है, जो कई बार आपके समझाने पर भी नहीं समझती है तब आपको दया आ जायेगी कि यह इसके वश की बात नहीं है, यह मजबूर है अपने संस्कारों से। तब आपका क्रोध दया में बदल जायेगा और आप काम, क्रोध के वेग से ऊपर निकल जायेंगे। जिसको कबीर साहब ने इस प्रकार कहा है -

''अपने सा जीव सबन का जाने, ताहि मिले अविनाशी।''

यहां कबीर साहब का कहना है कि भाई, यदि आप सुख शान्ति चाहते हो तो मन में दया रखो। हमको गृहस्थ में दया भाव रखने के अनेक अवसर मिलते हैं, जिनका पालन हम नहीं करते हैं। जैसे कभी बूढ़े माता-पिता कुछ ऐसा कह देते हैं, जो हमको अच्छा नहीं लगता और हम गुस्सा करके उनका मन दुखा देते हैं। हमें उनके बुढ़ापे पर दया नहीं आती कि बड़ी उम्र के कारण उनका मन व बुद्धि ठीक काम

नहीं करते हैं। कभी छोटे बच्चे कुछ कमजोर संस्कारों के कारण कुछ गलती करते हैं तो हम उनको मारते हैं या कटु वचन कहकर उनका मन दुखाते हैं। हमें उन पर दया नहीं आती है। कभी पति-पत्नी एक दूसरे के मन के अनुसार काम नहीं करने पर क्रोध में आकर गाली-गलौच या कटु वचन बोलकर एक दूसरे का मन दुखाते रहते हैं। यदि हम ध्यानी हैं तो हमको विवेक होगा और हम दयालु बन जायेंगे। तो गृहस्थ जीवन में हमें अपने मन, वचन पर संयम रखने का या दया भाव रखने का बहुत अवसर मिलता है।

बात स्पष्ट है कि यह विवाहित जीवन ही है, जिसमें हम संसार का सब सुख आनन्द लेते हुए, अपने शरीर, मन, वचन पर संयम रखते हुए रोज स्वर्ग जैसे सुख-आनन्द का रस लेते हुए जी सकते हैं। बात संस्कारों की है, जिसे बीज रूप में सुधारना अत्यन्त आवश्यक है। बहुत आसान बात है। यह मैं कोई नई बात नहीं कर रहा हूं। हमको सुखी जीवन जीने के लिए साथ की आवश्यकता है। पति-पत्नी का साथ प्राकृतिक है। विवाहित जीवन ही मनुष्य को पूर्ण बनाता है क्योंकि इसमें जीवन के हर अंग का अनुभव रहता है। जिसने विवाहित जीवन के रस, सुख, प्रेम व सेवा-भाव का आनन्द ही नहीं लिया वह परमात्मा से प्रेम क्या करेगा? कहने का भाव यह है कि ब्रह्मचारी पूरा मनुष्य नहीं होगा। वह गृहस्थियों को पूर्ण ज्ञान नहीं दे सकता। यही बात उन सन्यासियों के लिए है जो घर, पति-पत्नी या बाल-बच्चों को छोड़कर भाग जाते हैं। कुछ लोग बुद्ध, महाबीर की बात करते हैं। हम सब बुद्ध, महाबीर नहीं है। उन लोगों की कुछ और स्थिति थी। भाव यह है कि पहले इश्के मिजाजी है और उसके बाद इश्के हकीकी आती है। अर्थात् पहले घर को स्वर्ग बनाओ उसके बाद परलोक की बात आती है। जैसे गुरु नानक देव जी ने कहा है -

''घर सुख बसिया, बाहर सुख पाया।
कहे नानक गुरु मन्त्र दिलाया।''

''एक ने कही दूसरे ने मानी।
कहे नानक दोनों ज्ञानी।''

हमारे देश में बुद्ध, महावीर और गोरखनाथ इत्यादि के सिवाय सभी ऋषि, मुनि, अवतार या सन्त गृहस्थी हुए हैं जिन्होंने गृहस्थ का त्याग नहीं किया। यह जो ऊपर कुछ महापुरुष त्यागी, वैरागी हुए हैं, इनकी परिस्थिति कुछ और थी। मनुष्य के संस्कार और प्रकृति बहुत भिन्न-भिन्न है। मैंने यह अनुभव किया है कि मनुष्य इस विवाहित जीवन में ही घर गृहस्थी का काम करते हुए, इस जीवन का रस, सुख व आनन्द भोगते हुए अपने बाल-बच्चों में रहकर संसार-सुख का आनन्द लेते हुए परम शान्ति व परम आनन्द का अनुभव कर सकता है।

कुछ महापुरुषों ने स्त्री को परम शान्ति के मार्ग में रूकावट माना है, जो मेरे अनुभव से भिन्न है। हो सकता है वे महापुरुष अपने ही काम अंग से दुखी रहे हों, क्योंकि सावन के अन्धे को सब हरा ही हरा नजर आता है। अत: स्त्री जाति को हमेशा ऊंची दृष्टि से देखें व उसका सम्मान करें जैसे कहा भी गया है -

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवा:''

अर्थात् जहां स्त्री का सम्मान होता है, वहां देवता निवास करते हैं। स्त्री का केवल एक ही रूप नहीं है। वह मां है, जगत् जननी है, बहन है, बेटी है, परन्तु कामी सज्जन को उसका केवल एक ही रूप नजर आता है, पत्नी का। जिस सज्जन की जैसी दृष्टि है, उसको

वैसी ही दुनिया नजर आती है। यानी **''जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि''**। जैसे चोर को सब चोर ही नजर आते हैं, झूठे को झूठे और कामी को कामी। अर्थात् जैसा आदमी खुद है, वैसा ही उसको सब जगह भासता है। तो जो मैं बताना चाहता हूं, वह यह है कि पति-पत्नी ध्यानी बने, फिर उनको इस काम अंग का कष्ट नहीं रहेगा। मनुष्य आनन्द की तलाश में विषय भोग में फंस जाता है जो केवल 2 या 3 मिनट का आनन्द होता है। बाद में उनके विषाद (दुख) हाथ आता है। ध्यान का आनन्द वह घण्टों अनुभव कर सकता है, जिससे उसे मिलता है खुशी, उमंग, प्रेम, विश्वास व स्वास्थ्य। और यही वास्तव में जीवन के रस का आनन्द है। प्यारे सज्जनों किसी पूर्ण अनुभवी महापुरुष से ध्यान सीख करके देख लो। मेरी बात तब ही ठीक समझना जब आपका ध्यान बन जाए और आपको सब जगह इस जीवन में आनन्द ही आनन्द अनुभव हो। क्योंकि यह विषय अनुभव का है, आप करके देख लो। जैसे कहा है -

''जब तक न देखो अपने नैना।
तब तक न मानो गुरु के बैना।।''

अत: इस गृहस्थ जीवन को नरक न बनाओ। इसका आनन्द लेने के लिए पति-पत्नी ध्यानी बनें, तभी वे जीवन शक्ति को नष्ट न करते हुए एक बहुत ही प्रेम का जीवन अनुभव कर सकेंगे। मैं गुरु कृपा से इस गृहस्थ जीवन में बहुत ही प्रेम, खुशी व सुख-शान्ति का अनुभव करता हुआ जिया हूं।

मैं चाहता हूं कि मेरे प्यारे भाई, बहन, बेटियां अपने गृहस्थ जीवन को प्यारा और सुन्दर बनाएं। जीवन में जो दु:ख, तकलीफ, व रूकावटें महसूस करें उसे सत्संग से समझ कर ध्यान से दूर करें। यह जीवन एक सुन्दर खेल है। आपस में प्रेम-प्यार से रहें व मीठा

बोलें। जो अपने साथ रहते हैं - माता-पिता, पति-पत्नी व बच्चे, उनकी सेवा ही भगवान् की सेवा है। कहने का भाव यही है कि आपका विवाहित जीवन यानी गृहस्थ जीवन ध्यान और सत्संग से ही सुन्दर व आनन्दमय बनेगा। जैसे कहा है -

''शठ सुधरहि सत्संगत पाए।
पारस परस हि कुधात सुहाए।।''

गृहस्थ जीवन में आने वाले सुख व दुख दोनों जीवन का एक अंग हैं। जो बात या काम हमारे मन के अनुकूल हो जाए उसको हम सुख मान लेते हैं और जो मन के प्रतिकूल बात हो उसको दुख की संज्ञा देते हैं। मनुष्य सुख को स्वीकार करता है और दुख को नकारता है यानी उसे स्वीकार नहीं करना चाहता है। यह दोनों सुख-दुख मन के विषय हैं। जिस सज्जन को योग साधन से, विवेक से ज्ञान हो जाता है, वह सुख-दुख के अनुभव से ऊपर निकल जाता है। अत: सुखी जीवन बिताने के लिए गृहस्थी के लिए ध्यान व सत्संग अत्यन्त आवश्यक है। ध्यान करने से मनुष्य प्रेम व ज्ञान का भण्डार बन जाता है और उससे प्रेम और आनन्द की विकिरणें निकलती हैं। जो भी उनसे मिलता है, उस पर भी उनके आनन्द, प्रेम की विकिरणें प्रभाव डालती हैं जिससे पूरा घर, बच्चे, बूढ़े सब आनन्दमय हो जाते हैं और पूरा घर एक स्वर्ग बन जाता है। तो यह है गृहस्थ जीवन का आनन्द।

तो इस प्रकार ऊपर बताए गए तरीके से यदि पति-पत्नी मिलकर, विवाह से लेकर सन्यास आश्रम तक एक दूसरे के साथ रहकर, जीवन का सुख, आनन्द, शान्ति का अनुभव करते हुए यह खेल खेलते हैं तो वे यहीं पर स्वर्ग जैसा सुन्दर जीवन जी सकते हैं और अन्त में ईश्वर इच्छा से दोनों में से कोई एक रह जाता है तो उसको दुख नहीं होता है, क्योंकि वह सन्यास आश्रम में पहुंच गया

है। यदि सन्यास तक नहीं पहुंचा है, तब तो उसे अकेले रहने का दुख होगा। यह दुख-सुख कुछ है नहीं, केवल मन का विषय है। साधक ध्यान में संकल्प-विकल्प से ऊपर जितना जल्दी निकलेगा, दुख-सुख से सदा के लिए ऊपर उठ जायेगा। आगे केवल प्रकाश व शब्द है और इस प्रकाश व शब्द का अनुभव ही आध्यात्मिक जीवन है।

(3)

वानप्रस्थ आश्रम

प्राचीन काल में 50 साल की आयु के बाद गृहस्थी लोग अपनी घर-गृहस्थी का भार बाल-बच्चों पर छोड़कर अपना अगला जीवन सफल बनाने के लिए किसी महापुरुष से ज्ञान लेकर योग-साधना का अभ्यास करते थे। गृहस्थ में सांसारिक विषय भोगों को भोग कर समय आने पर उनसे उपराम हो जाने की भावना ही वानप्रस्थ आश्रम का मुख्य लक्ष्य रहा है। परन्तु आज का मनुष्य गृहस्थ में प्रवेश तो कर लेता है, परन्तु इसमें से निकलना ही नहीं चाहता। जो बड़े बुजुर्ग अपने समय में घर के मालिक रहे वो आखिरी समय तक मालिक ही बने रहना चाहते हैं, जिससे उनकी सन्तान को घर में अपनी आजादी से अपनी इच्छा के अनुसार काम करने का मौका नहीं मिलता और घरों में सास-बहु, बाप-बेटे के लड़ाई-झगड़े शुरू हो जाते हैं। इसी तरह जो कोई प्रधान की कुर्सी पर बैठ जाता है तो वह प्रधान पद के साथ चिपक जाता है और जो मन्त्री की कुर्सी पर बैठ जाता है तो वह मन्त्री पद को छोड़ना ही नहीं चाहता। ऐसा लगता है मानो यह कुर्सी उनके जीवन का एक हिस्सा बन गई है क्योंकि हुकूमत चीज ही ऐसी है,

जिसे कोई अपने हाथ से दूसरों को देना नहीं चाहता। इसी समस्या का समाधान करने के लिए ही हमारे प्राचीन ऋषियों ने इस वानप्रस्थ आश्रम की व्यवस्था शुरू की थी।

परन्तु आज समय बदल गया है। मनुष्य की आयु बहुत कम हो गई है। अतः मनुष्य को गृहस्थ में रहते हुए ही किसी महापुरुष का सहारा लेकर, उसका सत्संग सुनकर ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। यदि उसे सत्संग सुनकर समझ, विवेक व ज्ञान हो जाता है तो वह गृहस्थ जीवन का आनन्द लेते हुए ही वानप्रस्थ अवस्था को प्राप्त कर सकता है। इसके लिए उसे घर छोड़कर जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। वह घर में रहकर ही किसी महापुरुष से ज्ञान लेकर अपने माता-पिता व बड़े बुजुर्गों की सेवा करता हुआ, उनको खुश करता हुआ, अपना ऋण चुकाता हुआ इस वानप्रस्थ अवस्था का जीवन जी सकता है। अर्थात् वानप्रस्थ अवस्था का अर्थ ज्ञान प्राप्त करने के लिए सत्संग सुनकर अपनी रहनी बनाने से है। परन्तु ऐसे मनुष्य बहुत कम होते हैं। अधिकतर देखने में यह आता है कि मनुष्य अपनी सांसारिक, मानसिक, शारीरिक व आर्थिक समस्याओं से घिर कर, दुखी होकर किसी महापुरुष का सहारा लेता है और इस अध्यात्म की तरफ आता है। वैसे धन्य हैं वे लोग जो दुख, कष्ट के कारण भगवान् का सहारा लेते हैं। जैसे कहा है -

''सुख के माथे सिल पड़े, जो नाम हृदय से जाए।
बलिहारी वा दुख की, जो पल-पल नाम रटाए।।''

अब यह जीव के अधिकार, संस्कार, मन की पवित्रता की बात है। यदि उसके शुभ कर्म हैं तो उसको कोई पूर्ण अनुभवी महापुरुष मिल जायेगा और यदि उसके अशुभ कर्म हैं तो कोई ठग गुरु मिल जायेगा, जिससे जीवन भर सत्संग सुनने पर भी उसको कोई अनुभव

नहीं होगा। भाव यह है कि अपने प्रारब्ध कर्म भोगते हुए ही मनुष्य के कोई शुभ कर्म हैं तो उसे कोई पण्डित फकीरचन्द जी जैसा गुरु मिल जायेगा, जिसके ज्ञान से उसका सब काम इसी ही जीवन में हो जायेगा। मैंने यह समझा है या अनुभव किया है कि किसी पूर्ण, विवेकी व अनुभवी गुरु का मिलना मनुष्य के ही शुभ कर्म का फल होगा। यह गुरु-पीर का कोई दोष नहीं हे। वह तो अपना कर्म भोगने आया है और गुरु खुद अपना ही शुभ-अशुभ कर्म भोगने आया है। जैसे कहा है -

''करे करावे आप ही आप, मानुष के नहीं कुछ भी हाथ।''

अर्थात् यह सब मनुष्य के अपने कर्म का खेल है इस कर्म फिलोस्फी को मैंने **''मानव धर्म एवं अध्यात्म ज्ञान''** नामक पुस्तक में लिखा है। उसको पढ़कर पूरी बात समझ लेना।

अतः आप यह न समझें कि वानप्रस्थ के लिए कोई अलग समय है। जीवन में जिस जगह आप काम करते हैं, वह करते हुए, किसी महापुरुष में आस्था रखते हुए, उसके सत्संग सुनते हुए, साधन करते हुए, सहज में अपना योग साधते हुए यह ज्ञान प्राप्त करते रहो। परन्तु यह दोनों बातें साथ-साथ होती रहें। यानी साधन-अभ्यास रोज अपनी सुविधा के अनुसार और सत्संग जब मौका मिले, हर रोज, सप्ताह में एक बार या महिने में या छः महिने में, जब भी समय मिले, सुनते रहें।

तो इस प्रकार आज के युग में सन्तों ने समय के अनुसार बताया है कि आप लोग अपनी रोजी-रोटी कमाते हुए व बाल-बच्चों का पोषण करते हुए कुछ समय सत्संग सुनने व साधन-अभ्यास के लिए निकाल कर यह वानप्रस्थ आश्रम का जीवन घर में ही रहकर जियें। आज के मानव के लिए अपने सांसारिक काम करते हुए सहज में ही धर्म-कर्म का काम करना उचित है। यदि किसी भाई के पास

धर्म-कर्म के अनुभव के लिए पूरा समय व पूर्ण सुविधा है तो बहुत अच्छी बात है। परन्तु रोजी-रोटी अपनी खुद की कमाए, किसी दूसरे पर यह वजन न डालें और आखिरी दम तक कुछ न कुछ काम अवश्य करें। जैसा इस शब्द में कहा है -

कर्म करने के लिए, आए हैं हम संसार में।
कर्म करते हैं यहां, व्यापार में व्यवहार में।।
रहते हैं निष्काम, अपनी कामना कोई नहीं।
क्यों सताएं कर्म, हम कब आये कारागार में।
देख लो जल पक्षी को, जल से कहां भीगे हैं पंख।
डुबकी लेती रहती है, दिन रात जल की धार में।।
हम कमल के रूप हैं, खिलकर बने सूरजमुखी।
जल के ऊपर हंसते रहते, बसते हैं संसार में।।
धन्य सतगुरु राधास्वामी, ज्ञान का परिचय दिया।
हमको कुछ शंका नहीं, अब दाता के उपकार में।।

(4)

सन्यास आश्रम

हमारे ऋषि-मुनियों ने मनुष्य जीवन को चार आश्रमों में बांटा था। उस समय मनुष्य की आयु 100 वर्ष मानी जाती थी। अत: अन्तिम 25 वर्ष घर-बार, राज-पाट त्याग कर, सन्यासी की वेश-भूषा पहन कर ये सन्यासी सज्जन अपना अनुभव मनुष्य जाति के सभी वर्ण व आश्रम के लोगों को सुन्दर जीवन जीते हुए अन्त में परम शान्ति का

आनन्द भोगने तक का ज्ञान देते थे।

परन्तु समय के साथ सब कुछ बदलता रहता है। लेकिन लोगों में आज भी वही पुरानी रीति देखने में आती है। कुछ लोग अपने शरीर की वेश-भूषा बदल कर उसी पुरानी पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं। वे समझते हैं कि कुछ काम न करने का अर्थ ही सन्यास-आश्रम है। और हमारा देश ऐसे सन्यासियों से भरा पड़ा है, जो कुछ काम नहीं करते। सन्यास का वेश-भूषा से कोई मतलब (अर्थ) नहीं है। यह तो ज्ञान का ऊंचा व अन्तिम स्तर है। लेकिन लोग उसी पुरानी लकीर को ही पीटे जा रहे हैं। प्यारे सज्जनों! पहली बात तो यह है कि महात्मा बुद्ध, महावीर व गोपीचन्द जी जैसे महात्माओं के पास राज-पाट था जिसका उन्होंने त्याग किया। यह उनके अध्यात्म में एक रूकावट थी। और इसी प्रकार धर्मदास के पास इतना धन था जो उसके अन्दर के साधन योग में रूकावट थी। यानी उन लोगों की परिस्थिति और हालात कुछ और थे। हमारे पास त्याग करने के लिये है ही क्या? जो त्यागा जाए। यदि आप घर-बार, बाल-बच्चों को छोड़कर भागते हैं तो त्यागी, वैरागी नहीं हो सकते। हां, भगोड़ों की सूची में अपना नाम शामिल कर सकते हैं।

इस समय में यदि हम घर छोड़ेंगे तो कहां रहेंगे? क्या सोचेंगे? भिक्षा देने की श्रद्धा तो अब लोगों में रही नहीं। फिर किसी आश्रम का सहारा लेना होगा। आश्रम और घर-गृहस्थी में कोई अन्तर नहीं है। आश्रम चलाने वाले महापुरुषों को घर-गृहस्थी से भी ज्यादा झंझट है। यानी वे साधन क्या करें? दिन भर समस्याओं में ही उलझे रहते हैं।

लेकिन अब वह समय नहीं रहा जब कन्द-मूल और फल-फूल खाकर महात्मा जंगलों में रहते थे और तप करते थे। आज के मनुष्य की आवश्यकताएं इतनी बढ़ गई हैं कि वह एक दूसरे के सहयोग

के बिना जी ही नहीं सकता है। आज का त्याग और तप क्या है? उसको समझो।

त्याग और तप

अध्यात्म ज्ञान के विचार से तप जरूरी है। अब तप कहते हैं – सहनशीलता को। शास्त्रों में गर्मी–सर्दी को सहने व शरीर को कष्ट देने के भाव को तप माना है। वास्तव में मन के प्रतिकूल जो भी घटना हो, उसको अनुकूल बनाने का नाम ही तप है। हम गृहस्थी हैं। पांच–सात आदमी घर में इकट्ठे रहते हैं। प्रत्येक का स्वभाव, विचार व कर्म भिन्न–भिन्न है और यह भिन्नता प्रकृति की सुन्दरता है। यह बात समझ कर हम सहनशील बनें। बस तप का इतना ही मतलब है।

अब रही त्याग की बात। तो त्याग का मतलब है मन से छोड़ना। यह जो घर–बार, राज–पाट, धन–दौलत बाहर का त्याग हम समझ रहे हैं, यह तो किसी समय किसी आदमी के अपने योग–साधन में रूकावट रही होगी। अब तो इन सब चीजों की आवश्यकता है। इनके अभाव में हम कोई साधन, अभ्यास या ध्यान कर ही नहीं सकते हैं। यह सब कुछ हमारे पास हो और हमारा जी इनसे भर जाए यानी सन्तुष्ट हो जाए तभी समाधि की बात होगी। यदि गरीबी में भी साधन बनता तो आज भारत में न जाने कितने भिखारी हैं? सब सन्त हो जाते। तो इस समय त्याग का क्या भाव है ?

जब आप समाधि लगाते हो या ध्यान करते हो तो तरह–2 के विचार आपके मन में आते हैं। उन विचारों को यह जानकर छोड़ देना कि ये कुछ नहीं है, देखी–सुनी व पढ़ी हुई बातें हैं। जो हमारे शुभ और अशुभ कर्म बन गए थे, वही अब भासते हैं। ये सत्य नहीं है। इसको ही माया कहते हैं। जब यह विचार छोड़ दोगे, तब आपका मन इन विचारों के मण्डल से ऊपर चला जायेगा और आपकी समाधि

लग जायेगी। आपको परम आनन्द और परम शान्ति का अनुभव होगा। तो यह 'त्याग' वाला काम आप अपने घर में, दुकान में, खेत में या किसी प्रकार का सफर करते हुए भी कर सकते हो। भाव यह है कि ध्यान के समय जो विचार, संकल्प, विकल्प आते हैं उनको त्यागना ही वास्तविक 'त्याग' है।

अत: धर्म–कर्म की सफलता के लिए घर, बच्चे, स्त्री मत त्यागो। तप करो। यानी जो बात उनकी आपको ठीक न लगे तो प्यार से समझाओ और फिर भी वे अपनी आदतों से बाज न आये तो तप यह है कि सहनशील बनो। यदि पत्नी का मिजाज तेज हो या बहु–बेटे का, तो उनकी चार झाड़–फटकार सह लो, बस यही तप है। गुस्सा न करो। कोई फरक नहीं पड़ेगा। धर्मात्मा हों आपको मान–सम्मान से क्या लेना है? अत: त्याग की गलत समझ से घर, बाल–बच्चे छोड़ कर मत जाओ। इससे कोई कल्याण नहीं होगा। यदि एक बार घर से निकल कर, त्यागी बन कर भगवां कपड़े पहन लोगे तो फिर वापिस घर आना बड़ा भारी पड़ जायेगा। इसलिए ऐसी भूल मत करना। अपना कल्याण करो। जब साधन करने बैठो तो जो तरह–तरह के विचार या संकल्प मन को घेर लें तो उनको छोड़ दो क्योंकि ये सच नहीं है, केवल भासते हैं। जब इनको छोड़कर ऊपर जाओगे तो प्रकाश व शब्द, जिसको राम नाम कहते हैं, उसका अनुभव करोगे और आपको बहुत आनन्द व शान्ति मिलेगी। तो यह है इस समय के त्याग व तप की आसान विधि।

यह सन्यास आश्रम पहले तीन आश्रमों के साथ जुड़ा हुआ है। जो भावना पहले तीन आश्रमों में काम करती है, वही सन्यास में अपनी पूर्णता पर पहुंच जाती है। जैसे ब्रह्मचर्य आश्रम में अपनी शारीरिक व मानसिक ब्रह्मचर्य की शक्ति को कायम रखने के लिए जिस त्याग और तपस्या का पाठ सिखाया जाता है, वही त्याग और

तप गृहस्थ आश्रम में माता-पिता अपनी सन्तान को सुख देने के लिए करते हैं। यहां त्याग और तप के साथ-2 प्रेम व सेवा भाव भी बढ़ जाता है। और यदि गृहस्थ में रहते-रहते ही यदि पति-पत्नी किसी महापुरुष से ज्ञान लेकर ध्यान-योग सीख लेते हैं तो यही त्याग-तप की भावना वानप्रस्थ के भाव में बदल जाती है जिसका अर्थ है धीरे-धीरे मन का उपराम होना। अर्थात् विषयों को भोग कर उन्हें छोड़ देना। यही प्रवृत्ति से निवृत्ति मार्ग है। और सन्यास अवस्था में मनुष्य मोह-ममता के सब बन्धनों को तोड़कर अपने आप में ठहर जाता है। और सभी को समान दृष्टि से देखता है। वैसे सन्यास का अर्थ है- सब कुछ फूंक मार कर उड़ा देना। अर्थात् सभी विचारों को सत्य न मान कर उसमें नहीं फंसना ही सन्यास की अवस्था है।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ इन तीनों आश्रमों का अनुभव करते हुए जब मनुष्य को समझ, विवेक, अनुभव व ज्ञान हो जाए, तब वह इसी ही जीवन में मुक्त हो जाता है और निर्वाण व मोक्ष के सुख व आनन्द का अनुभव कर लेता है। इसी महापुरुष को सन्यासी, पण्डित व पूर्ण काम योगी कहा है। जैसे कहा है -

पण्डित वह जो मन परबोधे।
राम नाम आत्म में सोधे।
हरि की कथा हृदय बसाए।
सो पण्डित फिर योनि न आए।
चहुं वर्णा को दे उपदेश।
नानक उस पण्डित को सदा आदेश।।

यहां पण्डित का मतलब भी उसी सन्यासी से है जो मुक्त है अर्थात् जिसने मोक्ष या निर्वाण पा लिया है।

आज महापुरुषों व सन्यासियों के पास बड़े-बड़े धाम व डेरे हैं और जिनके पास नहीं हैं, वे बनाने के चक्कर में हैं अर्थात् ये सब

डेरे व धामों से बंधे हुए हैं जबकि सन्यास का अर्थ है सब प्रकार के बन्धनों से छुटकारा। अतः ये जो घर-बार छोड़ कर, भेष बनाकर, थोथा ज्ञान देते हुए अपने आपको सन्यासी या त्यागी कहते हैं, ये उस सन्यास अवस्था से बहुत दूर हैं। सन्यास बाहर का नहीं, भीतर का ज्ञान है। घर-बार छोड़ने का नहीं, राग-द्वेष, मोह-ममता को छोड़ने का मार्ग है; यह कथनी का नहीं रहनी का मार्ग है अर्थात् सन्यास जीवन-मुक्त अवस्था का नाम है और ऐसा सन्यासी जीते जी जीवन का आनन्द लेते हुए दुनिया से चलने के लिए हर वक्त तैयार रहता है। मैं इस अवस्था के सुख-आनन्द का अनुभव दिन-रात के अधिक समय में करता रहता हूं। आप यह न समझ लेना कि मैं अहंकारी हूं या अपने मुंह मिया मिट्ठू बन रहा हूं। मैं आपको अपना अनुभव बता रहा हूं। मुझे लेखन शैली नहीं आती और न ही यह बात लिखने को मेरे पास सुन्दर शब्द हैं। यह मेरा अपना अनुभव है, कोई दावा नहीं है। हो सकता है यह सच्चाई न हो। आपकी सेवा में साधु, सन्त, फकीर के लक्षण लिखता हूं जो मेरे गुरु जी को उनके गुरु जी ने लिखा था। यह सब परम शान्ति चाहने वालों पर लागू है।

सन्यासी या फकीर के लक्षण

तू फकीर है मेरे प्यारे, सुन फकीर की वाणी।
साधू कहें कबीर को भाई, साधू जग सुखदानी।।

1. **पर उपकारी, जन हितकारी, गुरु के आज्ञाकारी।**
अवगुण त्यागी, गुण के ग्राही, दया भाव चितधारी।।
निज चित्त सोधे मन परबोधे, जीव दोष नहीं दृष्टि।
अपने भाव में बरतें दिशदिन, करें दया की वृष्टि।।
2. **मोह माया और छल चतुराई, छोड़े मूल विकारा।**

पर हित लागी सहज वैरागी, ज्ञान बुद्धि भण्डारा।।
दुख क्लेश सहे अपने सिर पर, जीवन का करे सुधारा।
भव दुख भंजन काम निकन्दन, जम से दे छुटकारा।।

3. **धर कपास की गति विमल चित, निरस विशुद्ध कहावे।**
सहे विपत्ति कठिनाई जग की, और का दोष छिपावे।।
सरल स्वभाव रहे जग माहीं, अपना रूप संवारे।
औरन के अवगुण नहीं देखें, दया का मरम विचारे।

4. **सुख देवें दुख हरें निरन्तर, क्षमा करे अपराधा।**
हंसी खुशी आनन्द परम गति, अगम अलेख अबाधा।।
नाम फकीर धराया तूने, हो फकीर अब साचा।
जैसा नाम तो गुण भी वैसा, मन कर्म सहित सुवाचा।।
है फकीर का नाम प्यारा, मैं फकीर का दासा।।

5. **तन मन धन फकीर पर वारूं, बसूं सुसंग सुबासा।**
कठिन नाम है कठिन काम है, कठिन फकीर कमाई।।
जग के भव दुख नासें पल में, जग फकीर जब आई।।
जो फकीर मोहे दर्शन देवे, अपना भाग सराहूं।
अपने तन के चाम की जूती, पग फकीर पहनाऊं।।

6. **मैं नहीं राम कृष्ण का सेवक, ईश ब्रह्म नहीं जानूं।**
मैं फकीर का नाम दीवाना, सबसे बढ़कर मानूं।।
मेरे साध है शब्द विवेकी, सन्त वंश कुल शोभा।
चरण कमल मस्तक पर धारूं, प्रेम मग्न मन शोभा।।

7. **एक घड़ी साधु की संगत, कटे मोह जग फांसी।**
मेरी नजर में साधु फकीरा, सत चित आनन्द रासी।।
जो फकीर का दर्शन पाऊं, चरण सरोज पखा।
आप तरूं उसकी शरणाई, औरों को संग तारूं।।

8. **साधु की संगत गुरु की सेवा, सहज ही काम बनावे।**
जिस पर साधु की दृष्टि पड़ गई, जग योनि न आवे।।
तरवर सरवर मेघ का पानी, औरन को सुखकारी।
तैसे ही सुन मेरे फकीरा, साधु पर उपकारी।।

9. **तू फकीर बन तू फकीर बन, तू फकीर बन भाई।**
मैं भी तरू फकीर चरण लग, ए फकीर सुखदाई।।
सुन ले कथा सुनाऊं तुझको, प्रकटे विमल विवेका।
जीव अनेक रहें जग अन्दर, पर फकीर कोई एका।।

तो यह सन्यासी की अवस्था है। सन्यासी की रहनी कमल के फूल की तरह होनी चाहिए। जैसे कमल कीचड़ और पानी में पैदा होता है। और हमेशा पानी से ऊंचा रहता है। रसखान कवि इसे इस प्रकार बताते हैं –

सुनिए सबकी कछु न कहिए, रहिए भव इह वागर में।
रसखान गोबिन्द ही यूं भजिए, ज्यों नागर को चित्त गागर में।।

अर्थात् इस संसार में रहते हुए ऐसा ध्यान सुमिरन हो जैसे पनिहारी बातचीत भी करती है परन्तु उसका ध्यान सिर पर रखे हुए पानी के घड़े पर रहता है और वह उसको गिरने नहीं देती। यह ध्यान की विधि है। मेरा खुद का योग साधन का तरीका या विधि और है। उसमें कुछ करने धरने की बात नहीं है। सहज ही अपने आप होता रहता है।

''जीवन का साज भी क्या साज है,
बज रहा है और बे आवाज है।''

''कबीर धारा अगम की सतगुरु दई बहाय।
ताहिं उलट सुमिरन करो, सांई संग मिलाय।''

(5)

अर्थ (धन)

इस लोक में मनुष्य के चार पुरुषार्थों में अर्थ मुख्य है क्योंकि यह लोक अर्थ प्रधान है। जैसे चार आश्रमों में ब्रह्मचर्य प्रथम है, वैसे ही चार पुरुषार्थों में अर्थ प्रथम है। सन्त मत में इस बात पर विशेष ध्यान दिया है कि जो भी अध्यात्म का अनुभव करना चाहते हैं, वे अपनी रोजी-रोटी खुद कमा कर खायें, चाहे गुरु हों चाहे चेला। जैसे कहा है -

''जैसा अन्न, वैसा मन''

यानी मनुष्य जैसा अन्न खाता है, वैसा ही उसका मन हो जाता है। जो अपने खून-पसीने की कमाई करता है, उसका मन पवित्र होगा और जो हेरा-फेरी, चार सौ बीसी करके अर्थ कमाता है, उसका मन अपवित्र होगा व बुद्धि मलिन होगी तथा उसका मन अशान्त रहेगा।

गृहस्थ जीवन में प्रवेश करते ही मनुष्य की आवश्यकताएं बढ़नी शुरू हो जाती हैं और उसको अर्थ की आवश्यकता महसूस होती हैं। अब अर्थ कमाने के भिन्न-भिन्न तरीके हैं। हर आदमी समाज में अपनी आवश्यकता के अनुसार जहां भी काम कर रहा है और जिस तरीके से कमा रहा है, सब ठीक है, परन्तु बात उसकी नीयत की है। हेरा-फेरी, झूठ-कपट, किसी को धोखा देकर व मन दुखा कर यदि कोई मनुष्य कमाई करेगा तो उस कमाई से उसका शरीर, मन व बुद्धि सही नहीं रहेंगे और उसे सुखी जीवन का रस न मिल सकेगा। चाहे वह मजदूर हो, किसान हो, करोड़पति सेठ हो, राजनेता हो या धार्मिक गुरु-पीर हो। कहने का भाव यह है कि अर्थ इस लोक में

अत्यन्त आवश्यक है। बिना धन (अर्थ) के मनुष्य का जीवन अधूरा है। मनुष्य के लिए खाने को भोजन, रहने को मकान व तन पर वस्त्र की अत्यन्त आवश्यकता है। इसके बाद मनुष्य जीवन में जिस हालात, वातावरण व समाज में रहता है, उसके अनुसार अपनी-अपनी योग्यता व अधिकार के अनुसार उसकी आर्थिक स्थिति हो और वह अर्थ शुद्ध नीयत, मेहनत व ईमानदारी से कमाया हुआ हो। चोरी, हेरा-फेरी व छल-कपट से धन कमाने वाले लोग आध्यात्मिक बनने की बात छोड़ें, वे इस संसार के जीवन में शरीर, मन व धन से सुखी जीवन नहीं जी सकते हैं। ये शारीरिक, आर्थिक व मानसिक दुख इसी बात का परिणाम है। मैं यह किसी एक मनुष्य की बात नहीं कर रहा हूं, अपितु पूरी मनुष्य जाति की बात कह रहा हूं। सब पर यह बात लागू है। जैसा अन्न होगा वैसा मन होगा। यदि मनुष्य सुख शान्ति चाहता है तो यह बात सबसे पहले खुद सोच ले कि उसकी कमाई कैसी है? उदाहरणार्थ -

एक मेरा विश्वासी डी.टी.ओ. (D.T.O.) था। उसने एक दिन मुझे अपने घर पर बुलाया। चाय-पानी के बाद चर्चा शुरू हुई। मैंने अपने जीवन की घटना बताई कि भाई। मैंने सेना में छः साल तक भरती ऑफिसर के पद पर काम किया है। भरती होने के लिए लोग घूस देते थे, परन्तु मैंने कभी भी किसी से चाय तक नहीं पी। यानी अपने विषय में ईमानदारी की बातें कही। तब उस डी.टी.ओ. ने कहा कि मेरी तन्खाह (वेतन) बहुत कम है। यह कोठी और मेरा व मेरे बच्चों के रहन-सहन का स्तर आप देख रहे हो। सब ऊपर की यानी दो नम्बर की कमाई है। फिर मेरा कल्याण कैसे होगा? मैंने उससे कहा कि भाई, आप जो ऊपर से दो नम्बर की कमाई लो उसमें से 10% निकाल कर एक खाता बना लो। उस खाते से जरूरतमन्दों को वस्त्र, भोजन, दवाई पानी जिस बात से कोई दुखी हो, उसकी

सहायता कर देना, इतना करना ठीक होगा। मेरी नकल आप नहीं कर सकते हैं। इस काम से आप कुछ ठीक रहोगे। गरीबों का आशीर्वाद मिलता रहेगा। जितने भी जनता की व राज की चोरी करते हैं, उनमें आप कुछ कम दोषी माने जायेंगे। गुरु नानक देव जी कहते हैं –

''वंड छक, नाम जप''

यह बड़े-2 सेठ साहूकार ऐसा ही करते हैं। दो नम्बर की कमाई में से कुछ प्रतिशत बचाकर दान-पुण्य करते हैं। इस कर्म के फल से तो कोई बचता नहीं है। हां, इस दान-पुण्य से धन बढ़ता रहता है। लेकिन कर्म का फल और जिस नीयत से मनुष्य कमाता है, उसका फल तो सबको भोगना ही पड़ता है, चाहे वह सेठ हो, बड़ा ऑफिसर हो, चपड़ासी हो या राजनेता हो। इस कर्मफल से बचने के लिए किसी जीवित महापुरुष का सत्संग सुनकर, बात समझ कर उस पर अमल करना पड़ता है। इसी से सम्बन्धित एक कहानी है –

कोई सेठ अगले जन्म पर कर्जा देता था। जरूरतमन्द 100, 200 रूपये या जितनी जरूरत समझते थे, अपनी सामर्थ्य के अनुसार कर्जा अगले जन्म पर ले जाते थे। एक दिन धर्म, कर्म व पुर्नजन्म में विश्वास न रखने वाले दो पढ़े-लिखे युवक उस सेठ की दुकान पर गए, जहां वह कर्जा देता था। सेठ जी ने उनके वहां आने का कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि आप अगले जन्म पर कर्जा देते हैं। अत: हम एक लाख रूपया अगले जन्म पर कर्जा चाहते हैं। सेठ ने कहा – आप बड़े ग्राहक हैं, अत: पहले हम छोटे-छोटे कर्जा लेने वालों को चुका देते हैं, आपको कल सुबह देंगे। शाम के समय जब सब चले गए तब वे दोनों सेठ के एक बाड़े में गए जहां एक गाय और एक भैंसा बंधे हुए थे। गाय ने भैंसे से कहा कि भाई भैंसा। मेरा तो

लेना-देना सेठ से चूक गया है। बस शाम का दूध देने पर खाता बराबर हो जायेगा और मैं चली जाऊंगी। भैंसा बोला – बहन, मेरे ऊपर तो सेठ का बहुत कर्जा है। यह कर्जा एक बात से पूरा हो सकता है, यदि सेठ राजा के हाथी के साथ मेरा युद्ध करा दे, क्योंकि राजा के हाथी से मैं एक लाख रूपया मांगता हूं। यदि यह सेठ मुझे वहां ले जाए तो वह हाथी मुझे देखते ही मुझसे डर कर भाग जायेगा।

यह बात दोनों कर्जा लेने वाले नव-युवकों ने सुन ली और शाम को सेठ की गाय दूध देते ही मर गई। जब सेठ अपने उस पुराने घर में आया तो वे दोनों युवक सेठ जी से कहने लगे कि आप राजा के हाथी से अपने भैंसे के साथ एक लाख रूपये की शर्त लगाकर युद्ध करवाओ। यदि भैंसा हार गया तो वह रूपये हमारे नाम से लिख लेना वह हम राजा को देंगे। अगले दिन सुबह ही सेठ जी अच्छी पगड़ी बांधकर, पांच-दस आदमी साथ लेकर राजदरबार में गया और वहां अपने भैंसे के साथ राजा के हाथी के साथ युद्ध करवाने की बात की। राजा ने स्वीकार कर लिया और अगले दिन एक बड़ी चारदीवारी के अन्दर हाथी व भैंसे को युद्ध करने के लिए छोड़ दिया गया। भैंसे को देखकर हाथी चिंघाड़ मारकर आगे भागने लगा और भैंसा उसके पीछे। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि हाथी भैंसे से हार गया। सेठ को एक लाख रूपये भैंसा जीतने के मिल गए। वापिस आते समय भैंसा अचानक गिरा और मर गया। अगले दिन सुबह ही सेठ ने उन दोनों युवकों को अगले जन्म पर एक लाख कर्जा देने के लिए बुलाया। तब वे दोनों कर्जा लेने से इन्कार कर गए। कहानी कहां तक सच है या झूठ, पता नहीं। परन्तु दुनिया में हम हर रोज यह हालात देखते हैं। इस संसार का जीवन ही कर्जा लेने-देने का प्रतीत होता है। इसीलिए इस शब्द में कहा है –

साधो मानुष जन्म सुधारो।

अपनी करनी पार उतरनी, मन में समझ विचारो।
जैसी करनी वैसी भरनी, जन्म जुआ मत हारो।।
धन सम्पत्ति और हाट हवेली, एको काम न आवे।
यह बन्धन है जम की फांसी, अन्तकाल पछतावे।।
मात-पिता भाई सुत बन्धु संग न कोई सहाई।
गुरु की दया ले काज संवारों, बनति बनति बन जाई।।
अवसर पाया नर तन पाया, दुर्लभ अधिक अनूपा।
कर सत्संग सार कुछ समझो, निरखो अपना रूपा।।

तो आप मेरा भाव समझ गए होंगे कि यह लोक अर्थ प्रधान है। ये कुछ सज्जन जो अपने आपको त्यागी व वैरागी समझते हैं, यह उनका थोथापन है। आप आंख खोल कर देखो कि बिना अर्थ यानी धन के ये सज्जन कहां से अच्छे भोजन, बिस्तर व अन्य वैज्ञानिक सुख-सुविधाओं का उपभोग करते हुए देश-परदेशों की हवाई जहाजों से यात्रा करेंगे ? ये सब बातें तो करते हैं पुराने समय की, जब ऋषि-मुनि जंगलों में कन्द-मूल, फल-पत्ते, इत्यादि खाकर रहते थे व जीते थे और जीवन व्यतीत करते हैं आज के विज्ञान के बौद्धिक युग में जिसमें आज के मनुष्य को सब कुछ चाहिए। मैंने तो यह अनुभव किया है कि साधन-अभ्यास, भक्ति व अध्यात्म ज्ञान को वह प्राप्त कर सकता है जो अपनी रोजी-रोटी और जरूरत की वस्तु खुद ईमानदारी से कमाता है। मैंने ऐसा किया है। 36 साल तक बहुत ही मेहनत, ईमानदारी, खुशी व प्रसन्नता से सेना की सेवा की और जीवन का पूरा रस व आनन्द लिया। मेरे जीवन की बात यह रही कि कोई भी समस्या मेरे सामने नहीं आई। अब आठ हजार रूपये पैंशन के मिलते हैं। मेरी सभी जरूरतें इसी में पूरी हो जाती हैं। कुछ बच जाता है तो जरूरतमंदों

की सेवा कर देता हूं। मैं किसी सत्संगी का एक रूपया भी लेकर खाना जहर समझता हूं, क्योंकि मुझे हर माह आठ हजार रूपये पैंशन मिलती है। नहीं तो मैं भी सत्संगियों के खून-पसीने की कमाई खाता और वेष यह बनाता कि मैं बहुत बड़ा त्यागी हूं। जैसा आप चारों तरफ देख रहे हैं। सज्जनों बुरा मत मानना। मैं यह समझता हूं कि जो भी सज्जन आत्म-ज्ञान का साधन अभ्यास करता है और सत्संगियों की कमाई यह कह कर खाता है कि मैं त्यागी, वैरागी हूं और यह धन इस संसार में कुछ भी नहीं है तो वह महापापी है और लोगों को धोखा दे रहा है। उसे आत्म-ज्ञान की हवा भी नहीं लग सकती। हो सकता है, मैंने गलत समझा हो। परन्तु धन ईमानदारी से कमा कर ही खाना चाहिए।

कहने का भाव यह है कि यह लोक स्थूल पदार्थों का है। यहां अर्थ ही सबके लिए जरूरी है। बड़े-छोटे सबका जीवन अर्थ पर निर्भर करता है। परलोक सूक्ष्म है, अत: वहां केवल विचार, इच्छा से ही सब काम हो जाते हैं। जैसे आप स्वप्न में सब काम संकल्प से ही भोग लेते हैं और कारण लोक में केवल शान्ति यानी सम स्थिति बनी रहती है। वहां आपकी सुरत उस सार शब्द या नाम का अनुभव करती रहती है, वहां कुछ चाहिए ही नहीं। परन्तु इस लोक में सुरत बिना शरीर के नहीं रह सकती और शरीर को जीवित रखने के लिए अर्थ जरूरी है, चाहे वह सन्त है, अवतार है या कुछ भी है। अत: शरीरधारी अर्थ को न नकारें, क्योंकि अर्थ जीवन का बहुत बड़ा सहारा है। जैसे कहा है -

सांई इस संसार में, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गांठ में, तब लग ता का यार।।
यार संग ही संग डोले, पैसा रहा न पास।
यार मुख से नहीं बोले।।

धन की तीन गति बताई गई है –

1. धन कमाकर, खा–पीकर, सदुपयोग करके जो बचे, उसे जरूरतमन्दों में बांट दिया जाए। यह धन की प्रथम गति है और इसे ही मुख्य माना गया है। जैसे कहा है –

''सो धन धन्य, प्रथम गति जाकी।''

2. दूसरी गति – धन कमाकर खुद खा–पी लेना जैसे कहा है–

''चट डालो माल धन को, दमड़ी न रख कफन को।
जिसने दिया है तन को, वही देगा कफन को।।''

3. तीसरी गति धन की यह है कि खाने–पीने में तंगी रखते हुए, बचत कर–कर के बैंक में जमा करना या दूसरी तरह से जायदाद बना–बना कर छोड़ जाना। यानी खुद तंगी में जीवन जीते हुए धन इकट्ठा करना। यह धन की अधम गति है। अत: धन का हमेशा सदुपयोग करना चाहिए। जैसे कहा है–

जल में बाढ़े नाव, घर में बाढ़े दाम।
दोऊ हाथ उलिचिए, यही सज्जन को काम।।

अर्थात् जैसे पानी के अन्दर नाव में यदि जल इकट्ठा होना शुरू हो जायेगा तो नाव डूब जायेगी, इसी प्रकार यदि घर में अधिक दाम इकट्ठा हो जायेगा तो घर वालों की बुद्धि खराब हो जायेगी। और जैसे दोनों हाथों से पानी बाहर फेंक कर नाव को बचाया जाता है, उसी प्रकार धन का दान–पुण्य करके, घर से बाहर दूसरे जरूरतमन्दों की सेवा करके ही धन को बढ़ाया जा सकता है, क्योंकि दान देने से धन में कभी कमी नहीं आती। यही सज्जन का काम है और यही धन की प्रथम गति है, जिसे कबीर ने इस प्रकार कहा है –

''दान दिए धन न घटे, नदी न घटे नीर।
अपनी आंखों देख ले, यूं कथ कहें कबीर।।

और जिसे संस्कृत में इस प्रकार कहा है –

''उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्।
तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाभ्भसाम्।।''

अर्थात् जिस प्रकार सरोवर में भरे हुए जल का भी निकालने का स्थान बनाया जाता है, वैसे ही इकट्ठा किए गए धन का त्याग करना ही उसकी रक्षा है।

तो अन्त में मैं अर्थ के विषय में आपको यही कहूंगा कि आप आध्यात्मिक व धनवान् दोनों होकर ही इस लोक व परलोक के जीवन को सही तरह से जी सकते हैं। आप जिसको परलोक कह रहे हो, उसका अनुभव यहां इसी ही जीवन व इसी लोक में कर लो। मैं यह इसलिए कह रहा हूं कि मैंने गुरु कृपा से इस लोक का जीवन बहुत ही सुख, आनन्द व शान्ति का जिया है और अब भी इसी प्रकार जी रहा हूं। इस लोक व परलोक के सुखमय जीवन का अनुभव यहां अब शरीर में रहते हुए ही कर रहा हूं। परन्तु मरने के बाद क्या गुजरे? कुछ नहीं कह सकता हूं। केवल अनुमान है कि जिस सार शब्द या नाम का अनुभव मैं करता रहता हूं, यदि अन्त समय यही अवस्था रही तो यह मेरी बून्द रूपी सुरत उस शब्द रूपी सागर में मिल जायेगी। और यदि गुरु कृपा से वापिस यहां आ जाऊंगा तो सत्संग देकर तरह–तरह के भ्रम, शंका व अज्ञान को दूर करके लोगों को सुख–शान्ति का रास्ता बताऊंगा। यानी मैं पूरी तरह से मालिक की रजा में राजी हूं और मुझे दोनों अवस्थाएं स्वीकार हैं।

''गुरु की मौज रहो तुम यार।
गुरु की रजा सम्भालो यार।।''

(6)

धर्म

'धर्म' का अर्थ है - धारणा करना। सुख, प्रसन्नता, उमंग, खुशी के जीवन को धर्म कह सकते हैं। दुख, चिन्ता, डर, भय, निराशा, फिकाई का जीवन पाप कहा जा सकता है। यह लोक जीवन की सुन्दर लीला का है। यहां प्रकृति पूरी लीला कर रही है। पेड़ पौधे, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु सब सुन्दर लीला (खेल) कर रहे हैं। मनुष्य भी यहां लीला करने आया है और सबसे सुन्दर लीला यह मानव इस लोक में कर सकता है, परन्तु यह अज्ञानी है और बहुत भ्रम, शंका में उलझा हुआ है। इसको पूरी समझ, विवेक, अनुभूति कराने वाले व ज्ञान देने वाले जीवित महापुरुष के सत्संग की आवश्यकता है, तभी यह धर्मात्मा बन सकता है।

मनुष्य जो कर्मकाण्ड कर रहा है, इसी को ही धर्म समझ रहा है। जैसे - मन्दिर, गुरुद्वारा, मस्जिद, चर्च इत्यादि जाना; तिलक, धूप-दीप करना; तीर्थ, व्रत, नियम, आचार करना; यह सब तो कर्मकाण्ड है, जो किसी समय ठीक रहे होंगे। परन्तु यह धर्म से बहुत दूर की बात है। आज का मानव बहुत बुद्धिमान् है। उसने इस वैज्ञानिक युग में बहुत उन्नति की है। अतः आज के मानव का धर्म और है, क्योंकि समय के साथ सब कुछ बदलता रहता है। जैसे कहा है -

''हालत बदलती रहती है, हर वक्त बे गुमां।
तबदील होते हैं, यह जमीं व आसमा।''

तो प्रश्न है कि क्या भगवान् बदलता है? क्या आत्मा बदलती है? नहीं, न तो भगवान् बदलता है और न ही आत्मा बदलती है।

हां, भगवान् व आत्मा के अनुभव करने की विधि व ढंग और मनुष्य की प्रकृति, उसके संस्कार, अधिकार समय के अनुसार बदलते रहते हैं। परन्तु आज भी मानव धर्म की प्राचीन विधि-विधान की कोई टांग पकड़े बैठा है तो कोई पूंछ। और जो आज का धर्म है, उसकी और उसका ध्यान ही नहीं है। लोग सांगी बने हुए हैं। कोई भंगवा पहने हुए है, कोई दाढ़ी व सिर पर बाल रखे हुए है, कोई बुद्ध का अनुयायी बनकर भिक्षा मांगना ही अपना धर्म समझता है तो कोई बाल-बच्चे व स्त्री को छोड़कर भगोड़ा बना हुआ है।

वैसे यदि पीछे का इतिहास देखें तो जो महापुरुष समय के अनुसार संस्कृति, समाज, राज्य तथा धर्म के विधि-विधान में बदलाव लेकर आया तो उसका बहुत विरोध हुआ है। क्योंकि मनुष्य की एक आदत बन जाती है और वह भूत की सब बातों को ही देखने-सुनने का आदी हो जाता है। परन्तु प्रकृति का नियम ऐसा है कि यदि मनुष्य इस संसार में उन्नति चाहता है तो वह भविष्य में जिये। यानी ''शिव संकल्प'' रखे। क्योंकि जैसे उसके सुन्दर-सुन्दर विचार होंगे, वैसा ही उसका जीवन बनता जायेगा। यदि मनुष्य परम सुख व परम शान्ति का अनुभव चाहता है तो वह वर्तमान में जीने की विधि सीखे। क्षण-क्षण आनन्द में जीवन जिये। भूत और भविष्य का विचार रखने वाले को धर्म का जो मुख्य लाभ-परम आनन्द व परम शान्ति का है, उसका अनुभव नहीं हो सकता है। यह आनन्द तो श्वास-ग्रास का है, हर पल-क्षण का है। यहां सोच-विचार की बात ही नहीं है। अतः पहले जो धर्म-कर्म के विधि विधान थे, वे सब अब बूढ़े (पुराने) हो गए है। कहानी मात्र है। आज के मनुष्य के पास इतना समय भी नहीं है कि वह उन विधियों का प्रयोग करे और न उसके शरीर व मन में इतनी ताकत है। तो यह बात पहले ही कही हुई है कि इस समय

का क्या साधन व ढंग होगा? जैसे –

ध्यान प्रथम युग, मख युग दूजे।
द्वापर परतोषित, प्रभु पूजे।
कलि केवल एक नाम आधारा।
श्रुति स्मृति वेद मत सारा।। (तुलसी)

अर्थात् सतयुग में केवल ध्यान से आत्मा–परमात्मा का अनुभव हो जाता था, त्रेता में यज्ञ–हवन इत्यादि से, द्वापर में मूर्ति पूजा से और कलियुग में जो चल रहा है, केवल नाम के साधन से यह अनुभव होगा। यह शास्त्रों की भविष्यवाणी है। तो आज के मानव को कोई ऐसा महापुरुष जो खुद इसका अनुभवी व पूर्ण विवेकी है इस नाम का ज्ञान दे तो यह मानव धर्मात्मा बन सकता है।

भाई कोई सतगुरु सन्त कहावे, जो नैनन अलख लखावे।।
डोलत डिगे न बोलत बिसरे, जब उपदेश दृढ़ावे।
प्राण पूज्य क्रिया ते न्यारा, सहज समाधि सिखावे।।

द्वार न रूंधे पवन न रोके, नाहि अनहद उरझावे।
यह मन जाय जहां लग जब ही, परमार्थ दरसावे।।

कर्म करे निकर्म रहे जो, ऐसी जुगत लखावे।
सदा बिलास त्रास नाहि मन में, भोग में जोग जगावे।।

धरती त्याग आकाश हूं त्यागे, अधर मढैया धावे।
सुन्न शिखर के सार सिला पर, आसन अचल जमावे।।

भीतर रहा सो बाहर देखे, दूजा दृष्टि न आवे।
कहत कबीर बसा है हंसा, आवागमन मिटावे।।

यह निर्बन्ध, अनुभवी महापुरुष की कहानी है और ऐसा महापुरुष आपको भी यही सहज में खाते पीते, हंसते खेलते परम आनन्द और परम शान्ति का अनुभव करते हुए जीवन जीने का ढंग या तरीका बता देगा। बस यह छोटी सी बात है, जिसे इन महात्माओं ने बतंगड़ बना रखा हे। यह आस विश्वास, प्रेम, ध्यान, सेवा, भक्ति व श्रद्धाभाव का मार्ग है।

आपकी सेवा में एक छोटी सी कहानी लिखता हूं। सच–झूठ का तो मुझे पता नहीं, परन्तु आप इसका भाव समझें –

एक बार एक राजा व रानी शाम को घूमने निकले। वहां रास्ते में बैठा एक साधु खेल कर रहा था और जोर–जोर से आवाज लगा रहा था कि ''स्वर्ग के खिलौने ले लो''। रानी ने राजा से कहा कि हम भी कोई खिलौना ले लेते हैं। राजा हँसा और कहा कि यदि आप चाहती हैं तो ले लेते हैं। रानी ने साधु से कहा कि बाबा जी हमको एक स्वर्ग का घर दे दो। जब साधु ने उन्हें वह स्वर्ग के घर का खिलौना दिया तो रानी ने उसकी कीमत पूछी। साधु ने कहा एक रूपया। रानी ने एक रूपया दिया और वह स्वर्ग का घर ले लिया। अपने महल में आकर राजा–रानी ने उसे खिलौने को देखा, जिसमें रसोई, स्टोर, सोने के लिए कमरे, बाथरूम इत्यादि सब कुछ बना हुआ था। देखकर दोनों हंस–हंसा कर सो गए। रात को राजा ने स्वप्न देखा कि वह स्वर्ग में है और वहां एक घर पर उसकी पत्नी का नाम लिखा हुआ है। जब राजा घर के अन्दर जाने लगा तो द्वारपाल ने रोका। तब राजा बोला – यह तो मेरी पत्नी का घर है, आप मुझे नहीं रोक सकते। और जब राजा ने अन्दर जाने की जबरदस्ती की तो द्वारपार ने धक्का मार कर राजा को बाहर निकाल दिया कि यह घर तो रानी का है। राजा का स्वप्न टूट गया और उसे इस धक्के का बहुत अपमान व

दुख महसूस हुआ। शाम को राजा-रानी जब पुनः घूमने निकले तो राजा ने रानी से कहा कि आज एक स्वर्ग का घर मैं भी खरीदूंगा। रानी ने कहा - महाराज! आपका और मेरा घर एक ही है। कल जो हम खिलौना ले गए थे, वैसा ही यह है, परन्तु राजा नहीं माना और उसने साधु से 'स्वर्ग का घर मांगा'। साधु ने कहा - क्या आपके पास इसकी कीमत है? राजा ने कहा - मैं राजा हूं और मेरे पास बहुत रकम है। साधु ने कहा यह घर बहुत कीमती है। तब राजा ने कहा कि कल तो हम इसे एक रूपये में ले गए थे। साधु ने कहा- महाराज! कल तेा रानी ने इसे विश्वास से खरीदा था और आज आप धक्का खाकर आए हो। इसलिए इसका बहुत मूल्य चुकाने पर ही यह घर आपको मिल सकता है।

कहने का भाव यह है कि धर्म श्रद्धा और विश्वास का विषय है, यह कीमत से नहीं मिलता है। जो लोग कीमत से यह वस्तु खरीदना चाहते हैं तो बहुत मुश्किल है। यह तो आस-विश्वास, श्रद्धा भाव व प्रेम-प्यार का सौदा है। जैसे कहा है -

''जिन प्रेम कियो, तिन प्रभु पायो।''

सन्त मत में किसी जीते जागते महापुरुष को ईश्वर का स्वरूप मानकर, उसके प्रति श्रद्धा, आस-विश्वास व प्रेम भाव रखकर, उसकी सेवा को मुख्य माना गया है।

सेवा-भाव :

राधास्वामी मत में परम आनन्द व परम शान्ति की प्राप्ति के लिए गुरु की चार प्रकार की सेवा बताई है। वैसे यह सेवा-भाव सभी सम्प्रदायों में हैं। मैं विश्व धर्म का आदमी हूं और मैं जानता हूं कि मनुष्य जाति का एक ही भगवान् है और पूरी मानव जाति सुख, शान्ति व ज्ञान को चाहती है। यह सेवा इस प्रकार है -

1. तन की सेवा -

आरत सेवा नित ही करे।
काम क्रोध चित्त से हरे।
चरण दबावे, पंखा फेरे।
चक्की पीसे पानी भरे.....(सार वचन)

अन्त में इसी शब्द में कहा है -

कोई टहल में आर न लावे।
गुरु कहे सो कार कमावे।।

तो यह गुरु के तन की सेवा बताई है। जो सेवा करता है, वह पार हो जाता है।

2. धन की सेवा -

धन की सेवा यह है भाई, गुरु सेवा में खर्च कराई।
गुरु नहीं भूखा तेरे धन का, गुरु पे धन है भक्ति रतन का।।
पर तेरा उपकार करावे, भूखे प्यासे को दिलवावे।
उनकी मेहर मुफ्त तू पावे, जो उनको प्रसन्न करावे।

अर्थात् गुरु के नाम पर खर्च करना जैसे सत्संग कराना, लंगर कराना, सत्संगियों का इन्तजाम करना व सेवा करना इत्यादि।

3. मन-बुद्धि की सेवा -

दर्शन करे वचन पुनि सुने, सुन-सुन कर नित मन में गुने।
गुन-2 काढि लेवे तिस सारा, काढि सार तिस करे आहारा।
कर आहार पुष्ट हुआ भाई, जग भय लाज सब गई नसाहि।

अर्थात् गुरु जो बताए, उस पर अमल करना।

4. साधन-अभ्यास की सेवा -

अन्तरमुख बैठे एकान्त, अभ्यास करे पावे मन शान्त।
दो दल उलट गगन को धावे, खुशी होवे और नाद बजावे।
तब सतगुरु की जानी महिमा, जिन प्रताप बाजी धुन वीणा।
अलख अगम और मिले अनामी, अब कहूं धन-धन राधास्वामी।।

अर्थात् गुरु ज्ञान से अन्तर्मुखी होकर उसको अनुभव करना।

इस प्रकार जीव के कल्याण के लिए जो अनुभवी महापुरुष सेवा करा कर जीव को सुख-शान्ति का ढंग बताता है तो वह धन्य है। परन्तु जो महापुरुष अपने निजी स्वार्थ के लिए जीव को अज्ञान में रखकर यह सेवा लेता है तो उससे न तो जीव का कल्याण होगा और न गुरु का।

कोई यह न समझ ले कि मैं सेवा के विरुद्ध हूं। जो सेवा नहीं करेगा, उसे कुछ भी नहीं मिलेगा। मैंने अपने गुरु महाराज पं. फकीरचन्द जी की तन, मन, धन और ज्ञान की सेवा की है और उसी के फलस्वरूप आज मैं 80 साल की आयु में अति सुख, आनन्द व शान्ति का जीवन जी रहा हूं। कहने का तात्पर्य यह है कि सेवा जिस भाव से ली व करी जा रही है, लाभ उस भाव का है। मैं अपने वेतन में से कुछ प्रतिशत अपने गुरु जी को भेजता रहता हूं। वह मेरे भेजे पैसों से दुखी लोगों की सेवा करते थे। एक बार मैं उनके शरीर की सेवा हाथ, पैर दबाकर कर रहा था तो उन्होंने कहा कि तुम यह शरीर की सेवा अपने पिता जी की कर दिया करो, वह मुझे मिल जायेगी। उस दिन से लेकर जब तक मेरे पिता जी जीवित रहे, मैंने उनके शरीर की मन लगाकर सेवा की। एक बार फिर मैं अपने गुरु जी के तन की उसी प्रकार सेवा कर रहा था तो उन्होंने कहा कि यह मेरी असली सेवा नहीं है। मेरे यह पूछने पर कि आपकी असली सेवा क्या है? उन्होंने कहा कि यह ज्ञान जो मैं तुम्हें दे रहा हूं, इसको खुद अनुभव करके, दूर-दूर तक जो मेरे बेटे-बेटियां अज्ञान व भ्रम से दुखी हैं, उनसे बिना कोई मुआवजा लिए यह ज्ञान देना ही मेरी असली सेवा है। यह जो मैं गांव-गांव जाकर इस आयु में सत्संग देता हूं, कोई आप पर एहसान नहीं करता हूं। अपितु अपने गुरु जी की सेवा करता

नाम (विषय) है, कथा-कीर्तन या कर्मकाण्ड नहीं। यह धर्म एक तरह का बहुत ही मीठा नशा है। आज मनुष्य चाहे वह गरीब है, चाहे अमीर, इतना बेचैन है कि वह इस बेचैनी को मिटाने के लिए तरह-तरह का नशा कर रहा है, जिससे मनुष्य अधिक दुखी या बेचैन होता जा रहा है। धर्म का अनुभव मनुष्य की सब तरह की बेचैनी व दुख-दर्द को दूर करता है। यह बहुत ही गजब की दवाई है। जैसे कहा है -

''सर्व रोग का ओखद नाम।''

(नानक देव जी)

''राते पी नानका, उतर गई प्रभात।
नाम खुमारी नानका, चढ़ी रहे दिन रात।।''

(शब्द)

दरबार में प्यारे सतगुरु के, दुख-दर्द मिटाए जाते हैं।
दुनिया के सताए लोग यहां, सीने से लगाए जाते हैं।
क्यों डरते हो ए जग वालो, इस दर पर शीश झुकाने से।
इस दर पर ए दुनिया वालो, अलमस्त बनाए जाते हैं।
यह महफिल है मस्तानों की, मर्दानों की, दीवानों की।
भर-भर के जाम हिफाजत के, हर रोज पिलाये जाते हैं।
इलजाम लगाने वालों पर, इलजाम लगाये जाते हैं।
जिन-जिन के बुलावे आते हैं, बस वो ही बुलाए जाते हैं।

(शब्द)

महादेव कहें सुन पार्वती, ये बीजिया मत देत गंवारन को। (टेक)
बालक पीवे बक-बक हंसन को, बूढ़ा पीवे झक मारन को।
शिवशंकर कहे.....

हूं और उनका हुक्म बजाता हूं।

धन्य हैं वे प्यारे सत्संगी, जो गुरुओं के आश्रमों में जाकर सेवा करते हैं और संगत को लाभ पहुंचाते हैं। परन्तु इस सेवा का लाभ तभी है जब वे पहले आप अपने माता-पिता व पति-पत्नी की सेवा करते हैं। यदि घर में सेवा नहीं की तो इस सेवा का कोई लाभ नहीं होगा। क्योंकि -

''पहले अपने आप, फिर माई और बाप।''

''घर सुख बसिया तो बाहर सुख पाया।
कहे नानक गुरु मन्त्र दिलाया।''

सत्संगियों के लिए यह आवश्यक है कि पहले वे अपने माता-पिता, घर-बार की सेवा करके यदि समय है तो परमार्थ के विचार से गुरु महाराज व आश्रम में संगत की सेवा करें, जो बहुत बड़ी सेवा होगी। परन्तु अन्ध विश्वास की सेवा का कोई विशेष लाभ नहीं होगा और पूज्य गुरुओं के लिए यह आवश्यक है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि अन्त में आश्रम या संगत ने साथ नहीं जाना है। उनकी ही नेकी-बंदगी का फल साथ जाना है। और कर्म के फल से चाहे वह गुरु हो या चेला कोई बच नहीं सकता है। जैसे वाणी में कहा है -

गुरु चेला व्यवहार जगत में, झूठा बरत रहा।
का से कहूं समझ नहीं काहू, धोखे धार बहा।।
गुरु तो मान प्रतिष्ठा चाहें, चेला स्वार्थ संग भया।
सच्चा मार्ग सुरत शब्द का, सो अब गुप्त भया।।

गुरु नाम समझ, विवेक, अनुभव व ज्ञान का है। यह जहां

जिस महापुरुष से मिले, ले लो। यदि किसी की संगत से आपको लाभ ही न हुआ हो तो दूसरा दरवाजा खटखटाने में कोई पाप नहीं समझता हूं। बात सुख-शान्ति की है। यह जहां से आपको मिले, ले लो।

अब प्रश्न यह है कि इस सेवा से आपको मिलेगा क्या? जिस जरूरतमंद की आप सेवा करेंगे, उसके मन से आपके लिए शुभ भावनाएं या आशीर्वाद अपने आप निकलेगा। हर आदमी जो भी विचार करता है, उसके मन से विकिरण की धारें निकलती रहती हैं, जिसको Radiation कहते हैं। आपने सूरज से किरणें निकलती देखी हैं, ऐसे ही मनुष्य के मन से धारें निकलती हैं। तो जरूरतमंद की सेवा किए जाने पर उसके मन से खुशी के भाव आशीर्वाद के रूप में अपने आप निकलते हैं, जिससे मनुष्य का जीवन सुख, शान्ति का व आनन्दमय हो जाता है। अब यह आपकी इच्छा पर है कि यह आशीर्वाद आप अपने माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बन्धु, पड़ौसी, गुरु, पीर, संगत या किसी गरीब दुखी मनुष्य की सेवा करके कैसे लेते हैं ? गुरु से तो आपको समझ, विवेक, अनुभूति व ज्ञान मिलेगा। बाकी आशीर्वाद या शुभ भावना तो आप जिसकी सेवा करेंगे, उसी से मिलेगा। अतः सेवा का बहुत बड़ा फल है और यह सेवा पहले हम अपने घर, परिवार व पड़ौस से शुरू करें और फिर आहिस्ता-2 अपना क्षेत्र अपनी सुविधा व योग्यता के अनुसार बढ़ाते जायें। तो यह मनुष्यों की सेवा ही भगवान् की सेवा है। जैसे कहा है -

''खलकत की सेवा ही खाला की सेवा है।''
"Service of the people is service of the God"

तो प्यारे सज्जनों ! 'धर्म' केवल अपने अन्दर अनुभव का

क्षत्री पीवे रण खेत लड़त है, गज हस्ती के दन्त उखाड़न को।
शिव.....
साधु पीवे अलमस्त रहन, निज गुरु के धाम सिधारन को।
शिव.....
शिव की बाड़ी है हरियाली, अमर नाम सिधारन को।
शिव.....

तो यह धर्म निराश व उदास आदमियों या महात्मा कहलाने वालों के अनुभव में नहीं आया है। वे तो जीवन के रस, आनन्द व खुशी से बहुत दूर है। वैराग का मतलब है सब चिन्ता, फिकर, डर, भय आदि से मुक्त होना। साधु की रहनी तो बहुत मस्ती व आनन्द की होती है। जो साधु होकर निराशा व उदासी का जीवन जीते हैं, वे साधु तो क्या? संसारी लोगों से भी नीचे के दर्जे पर जी रहे हैं, क्योंकि ये संसारी भी कभी-कभी हंस लेते हैं, गा लेते हैं, नाच लेते हैं। इसी प्रकार का भाव कबीर साहब के शब्द में देखें -

हमन है इश्क मस्ताना, हमन को होशियारी क्या? (टेक)
रहें आज़ाद या जग में, हमन दुनिया से यारी क्या ?
जो बिछुड़े हैं प्यारे से, भटकते दर बदर फिरते।
हमारा यार है हम में, हमन को इन्तजारी क्या ?
खलक सब नाम अपने को, बहुत कर सिर पटकती है।
हमन गुरु नाम साचा है, हमन दुनिया से यारी क्या ?
न पल बिछुड़े पिया हम से, न हम बिछुड़े प्यारे से।
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेकरारी क्या ?
कबीर इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से।।
जो चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या ?

कहने का भाव यह है कि धार्मिक लोग खुशी, उमंग, बेफिकरी व निर्भय का जीवन जीते हैं। मैं यहां किसी महात्मा व साधु-सन्त की वेषभूषा के विरोध में नहीं हूं। मुझे सभी साधु, सन्त, महात्माओं से प्यार है, क्योंकि जिसके जन्म-जन्मान्तरों के जैसे संस्कार हैं, वे वैसा करने को मजबूर हैं और उसी ही संस्कार को वे सही मानते हैं। मैंने यह बात आपको रहस्य समझाने के विचार से बताई है कि भाई, मनुष्य का शरीर एडी से लेकर चोटी तक अध्यात्म का भरा हुआ है। भ्रम और अज्ञान के कारण वह उस धर्म को बाहर तलाश करता भटक रहा है। वह परम आनन्द व शान्ति न तो किसी वेषभूषा में है, न तीर्थ-व्रत में है, न नियम आचार में है और न ही किसी कर्मकाण्ड में है। परन्तु जीव मजबूर है और जो संस्कार उसके मन पर पड़े हुए हैं, वह उन्हीं को सच मानता है। यदि कोई सुख शान्ति चाहता है तो उसके लिए रास्ता खुला है। जैसे कहा है -

''फैज का दर है खुला, बन्द नहीं हरगिज।
शर्त यह है कि कोई, मांगने सायल आए।।''

तो अब आप समझ गए होंगे कि धर्म क्या है? मनुष्य खुद अपने आपको साधन करके जान ले कि वह शारीरिक, मानसिक, आत्मिक और सुरत रूप में क्या है? बस धर्म का सार अपने आपको अनुभव करना है। यह पुस्तकों में जो धर्म के विषय में लिखा हुआ है, इनमें धर्म नहीं है। यह तो ''दिल को बहलाने को गालिब ख्याल अच्छा है, वाली बात है -

जान ले अपने को, तो इन्सान खुदा है।
जाहिर में है खाक, गो खाक नहीं है।।

मैंने गुरु कृपा से यहां स्वर्ग जैसा जीवन जिया है और धर्म-कर्म भी बहुत ही सहज आसानी से जीते हुए अनुभव किया है। और

अब भी जिस राम नाम की महिमा आप गा रहे हैं व जिसे शास्त्रों में लिखा हुआ है, उसका अनुभव हर समय यानी जब होश में रहता हूं, खाते, पीते, हंसते, चलते, फिरते सहज ही करता रहता हूं। और आप भी इसे सहज ही कर सकते हैं। आपके ही अन्दर यह शब्द रूपी धारा हर समय बह रही है। बस इसके लिए केवल अनुभवी गुरु की आवश्यकता है। ये जो सज्जन कथाकार हैं और पिछलों की बातें ही अपने सत्संग में बता रहे हैं, ये आपको जो आज का सहज धर्म है, उसका अनुभव नहीं करा सकेंगे। क्योंकि यह विषय अनुभव का है। राधास्वामी वाणी में कहा है –

''सतगुरु खोजो री जग में, दुर्लभ रत्न यही।''

(शब्द)

बहा सत्संग का दरिया, नहा लो जिसका जी चाहे।
जिगर से दाग पातक के, छुड़ा लो जिसका जी चाहे।।

भरे हैं रत्न बेकीमत, बड़े आला से आला हैं।
जरा इसमें लगा गोता, उठा लो जिसका जी चाहे।।
बहा सत्संग.....
ऋषि मुनियों ने भी गाई, बहुत कुछ इसकी जो महिमा।
लिखा वह पोथियों में है, पढ़ा लो जिसका जी चाहे।।
बहा सत्संग.....
दुखों से मुक्ति चाहता है, तो ए धर्मदास सतगुरु की।
शरण आ-काल से फन्दा, छुड़ा लो जिसका जी चाहे।।
बहा सत्संग.....

(7)

काम

सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'कामसूत्र' के लेखक वात्स्यायन मुनि ने इस काम अंग पर अपना अनुभव बहुत ही सुन्दर ढंग से लिखा है। उनका लिखना है कि गृहस्थ में पति-पत्नी यदि काम-क्रीड़ा को सही तरीके से भोगें तो उनका गृहस्थ जीवन बहुत ही प्यारा और स्वर्ग जैसा सुख-शान्ति का हो सकता है। हो सकता है मुनि कामी रहा हो और उसने यह अनुभव किया हो। मेरा इस विषय में यही अनुभव है कि इस दुनिया का जीवन ही पूरा काम अंग से पैदा होता है, क्या मनुष्य और क्या पशु-पक्षी? यह तो प्रकृति का नियम है। इसलिए इसको बुरा तो हम नहीं कह सकते। परन्तु यह सन्तान उत्पत्ति तक तो सुन्दर है, लेकिन स्वाद के लिए जो यह विषय भोग है, यह मनुष्य को शरीर व मन से रोगी बना देता है और मनुष्य के रोगी होने का सबसे बड़ा कारण यह वीर्य नाश ही है। मनुष्य के शरीर में यह वीर्य ही जीवन की शक्ति, जीवन-तत्त्व या जीवन ज्योति हे। यह शरीर और मन को जीवन व शक्ति देता है, साहस बढ़ता है तथा संयम की शक्ति उत्पन्न करता है। यह आनन्द और खुशी का भण्डार है। और इसी की शक्ति से मनुष्य बुढ़ापे तक आनन्द का जीवन व्यतीत कर सकता है।

मैं वात्स्यायन मुनि के अनुभव से यहां तक तो सहमत हूं कि पति-पत्नी को यह काम-क्रीड़ा बहुत ही प्रेम भाव से खेलनी चाहिए। परन्तु यह बात तो सन्तान उत्पत्ति तक सत्य है। पति पत्नी इस काम-क्रीड़ा से बड़ी योग्य व कल्याणकारी सन्तान उत्पन्न कर सकते हैं।

इसके आगे उन्होंने ध्यान-योग की चर्चा नहीं की है। यह काम-क्रीड़ा परम सुख व परम आनन्द देने वाली नहीं है। यदि मनुष्य इस महान शक्ति को इन्द्रियों के वशीभूत होकर स्त्री संभोग में नष्ट करता है तो वह इस शरीर रूपी इमारत की नींव को खोखला करता है और थोड़े ही समय में वह अनेक रोगों का शिकार बन जाता है। उसका दिमाग थोथा व स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और घर में कलह शुरू हो जाती है। अत: मनुष्य को सन्तान पैदा करने के लिए ही इस शक्ति को प्रयोग में लाना चाहिए। काम वासनाओं की तृप्ति के लिए अधिक काम भोग का परिणाम यह है कि सन्तान की आवश्यकता न होते हुए भी बच्चों का पैदा हो जाना, जिसे अनचाही सन्तान कहा जा सकता है और यह अनचाही सन्तान किसी भी तरह अपने लिए या समाज के लिए हितकारी नहीं हो सकती है। अत: केवल इतनी सन्तान उत्पन्न करनी चाहिए, जिसका पालन-पोषण सहूलियत से किया जा सके। इसलिए शारीरिक व मानसिक रूप से ब्रह्मचर्य का पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। मानसिक ब्रह्मचर्य से मेरा अभिप्राय: यह है कि विचारों द्वारा काम भोग का आनन्द न लिया जाए।

आज जो गृहस्थ जीवन में आप चारों और अशान्त वातावरण देख रहे हैं, यह प्रेम व आनन्द के अभाव का फल है। मनुष्य का मन नवीन प्रिय है। यह रोज नया आनन्द चाहता है। यह आनन्द अपना खुद का है जो ध्यान में अनुभव किया जा सकता है। आज का मनुष्य अति कामुक है और जितना बाहर का मीडिया या साधन हैं, वे सब मनुष्य को कामी बनाकर पागलों जैसे हालात उत्पन्न कर रहे हैं। और मनुष्य इस चकाचौंध में बहक कर अपनी शक्ति नष्ट कर रहा है और यही उसकी अशान्ति का मुख्य कारण है। यदि इस शक्ति को सम्भाल कर रखा जाये और इसका रूझान ऊपर की ओर कर दिया जाये तो

यह शारीरिक, मानसिक और आत्मिक जीवन में सुख-शान्ति, आनन्द व प्रसन्नता की वृद्धि कर सकता है। यहां किसी बात की कमी नहीं है। इस जीवन को स्वर्ग जैसा बनाया जा सकता है, क्योंकि यह लोक संकल्पमय है। यदि आप अपने विचार सुन्दर बनायें रखें तो आपका जीवन भी सुन्दर, सुखमय व प्यारा बन जायेगा। यह मेरे पूरे जीवन का अनुभव है।

अत: मैं वात्स्यापन मुनि के द्वारा बताई गई पति-पत्नी की काम-क्रीड़ा से सन्तान-उत्पत्ति तक तो सहमत हूं, परन्तु यह तो एक जीवन की छोटी सी क्रीड़ा है, पूर्णता नहीं। यह पूर्णता तो ध्यान- योग से ही सम्पन्न होती है। जैसे कबीर साहब ने कहा है -

''काम काम सब कोई कहे, काम न चिन्हे कोय।
जेति मन की कामना, काम कहावे सोय।।''

अर्थात् काम का अभिप्राय: केवल का मांग ही नहीं है, अपितु हर प्रकार की प्रबल इच्छा भी इसमें सम्मिलित है। अत: जिस प्रकार के तुम्हारे भाव और विचार होंगे, उसी के अनुसार तुम्हारा जीवन बनेगा। दुनिया के हर काम में निर्भयता, निडरता की आवश्यकता है और यह अवस्था उसमें तभी आ सकती है, जब उसका आचरण सही हो। इसलिए यदि मान चाहते हो तो दूसरों का मान-सम्मान करो। धन चाहते हो तो दान दो और प्रेम चाहते हो तो प्रेम करो। इस संसार में जो कुछ भी अपने सच्चे मन से कोई आदमी देता है तो वही वस्तु उसको मिल जाती है। अत: प्रेम करना, घृणा-द्वेष करना, भलाई-बुराई करना या उपकार करना सब कुछ इन्सान के हाथ में है। जैसे-जैसे विचार रखोगे, वैसा-वैसा ही तुम्हारा मानसिक जीवन बन जायेगा। जैसे कहा है - **''जैसा ख्याल, वैसा हाल''। ''जैसी करनी वैसी भरनी''।** इसलिए जैसा बनना चाहते हो या अपना जीवन बनाना चाहते हो, वैसे ही विचार

अपने मन में रखो। कुछ करने के लिए मन सहारा चाहता है। इसलिए सन्तों के मार्ग में इष्ट बनाया जाता है और वह इष्ट गुरु का इष्ट है।

इसलिए पति-पत्नी को चाहिए कि वे गुरु का सहारा लें व उनसे ध्यान-योग सीखें क्योंकि जिस आनन्द को लोग विषय-भोग में तलाश करते हैं, उससे सौ गुणा ज्यादा आनन्द उनको ध्यान में मिलेगा और उनका गृहस्थ जीवन बहुत ही प्यारा, मीठा व सुखकारी होगा। मैं ऐसे पति-पत्नी का जीवन देखता हूं, जो ध्यान योग के साधक हैं। ऐसे परिवारों का जीवन देखने योग्य है।

शब्द

गुरु से कर मेल गंवारा, का सोचत बारम्बारा।। (1)
जब पार उतरना चाहिए, तब केवट से मिलि रहिए।। (2)
जब उतरि जाय भव पारा, तब छूटे यह संसारा।। (3)
जब दर्शन देखा चाहिए, तब दर्पण मांजत रहिए।। (4)
जब दर्पण लागत काई, तब दर्शन कहां से पाई।। (5)
जब गढ़ पर बजी बधाई, तब देख तमाशे जाई।। (6)
जब गढ़ विच होत सकेला, तब हंस चलत अकेला।। (7)
कहे कबीर देख मन करनी, वा के अन्तर बीच कतरनी।। (8)
कतरनी के गांठि न छूटै, तब पकड़ पकड़ जम लूटे।। (9)

(8)

मोक्ष

मनुष्य जीवन की मंजिल मोक्ष या शान्ति है। वैसे तो क्षणिक शान्ति का अनुभव मनुष्य जीवन में करता रहता है। यहां मेरा भाव

'परम शान्ति' से है, जो हर समय व हर स्थिति में बनी रहे। इस परम शान्ति या मोक्ष तक पहुंचने के लिए मनुष्य जीवन के चार आश्रमों से गुजरते हुए तथा चार पुरुषार्थ करते हुए ही इस आखिरी मंजिल तक पहुंचता है।

'मोक्ष' का अर्थ है - **सभी प्रकार के विचारों, भावों व बन्धनों से छुटकारा पा लेना या मुक्त हो जाना।** मनुष्य मकड़ी के जाले की तरह अपने ही विचारों का ताना-बाना बुनता रहता है और फिर मकड़ी की तरह अपने ही बनाए हुए विचारों के जाल में फंस जाता है, यही उसका बन्धन है। अर्थात् किसी वस्तु या विचार से बन्धना या आसक्त होना ही बन्धन कहलाता है। और गुरु ज्ञान से इस दुनिया को समझ लेना और इसमें न फंसना ही 'मोक्ष' है। भाव यह है कि जब मनुष्य को ज्ञान, समझ व विवेक से यह होश आ जाता है कि मैं तो एक चैतन्य का बुलबुला हूं और कुछ समय के लिए यहां खेल खेलने आया हूं तो वह यह सब दुनिया के खेल खेलते हुए उसमें आसक्त नहीं होता और साक्षी भाव से सब खेल खेलता है तो यह उसकी मुक्ति की अवस्था है। इसे ही जीवन्मुक्त अवस्था कहा गया है। कर्म फिलोस्फी को मानने वालों के लिए कहा गया है कि मनुष्य अपने सभी कर्म जैसे संचित, प्रारब्ध व क्रियमान् को ज्ञान की अग्नि में जला कर भस्म कर देता है तो उसको मुक्ति, निर्वाण या मोक्ष मिलता है। जहां तक मेरा अनुभव व समझ है यह मुक्ति, निर्वाण व मोक्ष का अनुभव ही परम शान्ति कहलाता है, जिसे मनुष्य अपने इस संसार के जीवन काल में ही अनुभव कर लेता है।

प्यारे सज्जनों ! दिन-रात के अधिक समय में जब मैं आन्तरिक जीवन धारा या नाम के अनुभव में होता हूं, तो इस मुक्ति व परम शान्ति का अनुभव इसी ही जीवन में करता रहता हूं। जब बाहर के

प्रभाव से उस जीवन धारा से मेरी सुरत अलग हो जाती है तो मैं भी विचारों तथा संकल्प में आ जाता हूं और तब कुछ समय के लिए मैं उस परम शान्ति से नीचे गिर जाता हूं। यानी 100% तो मैं नहीं कह सकता हूं, परन्तु 80-85% उसका अनुभव अब जीवित अवस्था में ही करता रहता हूं। मरने के बाद जो मुक्ति मिलती है, उसका मुझे पता नहीं है, क्योंकि मरने के बाद वाली मुक्ति के बारे में तो आज तक किसी महापुरुष ने आकर कहा नहीं है। केवल अनुमान किया जा सकता है।

मनुष्य के जीवन में अशान्ति के बहुत से कारण हो सकते हैं, परन्तु मुख्य कारण है - आर्थिक संकट, शारीरिक रोग, मानसिक असमता और आत्मा का अज्ञान। परन्तु मुझे इस संसार के जीवन में कभी किसी प्रकार के अभाव का अनुभव नहीं हुआ है। अत: मैं तो यही कहूंगा कि यह संसार ही भगवान् ने मनुष्य के लिए पूर्ण सुख व आनन्द भोगने के लिए बनाया हे। यह एक अति सुन्दर बगीचा है। यहां किसी भी बात का अभाव नहीं है। जैसे कहा है -

''सकल पदार्थ है जग माहि।
कर्म हीन नर पावत नाहि।।''

परन्तु हमारे सन्त-महात्माओं ने इस लोक को दुखों का घर बताया है। हो सकता है उनके जीवन में जब कोई घटना उनके मन के प्रतिकूल घटी हो, तब उनको यह समझ, विवेक न रहा हो कि उनके ही अशुभ कर्म का फल उनके सामने आया है। इसलिए उन्होंने यह दुख का लोक माना हो। और कुछ लोग दूसरों के देखा-देखी या उनके कहे अनुसार ही उसी बात को दोहराते रहते हैं, जबकि उनका खुद का कोई अनुभव नहीं होता है। कई सज्जनों ने जन्म-मरण को भी दुख बताया है जो अनुचित है जो जन्म लेगा, वही मरेगा और जो मरेगा वही जन्म लेगा। जिसे गीता में इस प्रकार कहा है -

''जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतज्ञय च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।''

अर्थात् जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म निश्चित है।अत: इस न टाले जा सकने वाले विषय पर शोक करना उचित नहीं यह तो प्रकृति का खेल है। जो फूल खिलेगा, वही तो मुरझायेगा और फिर अपने समय पर खिलेगा। जो एक ही हालात में रहे, वह तो खेल नहीं हुआ। यह प्रकृति पूरी खेल रही है। हमारी सूरत भी यहां इस लोक में खेल खेलने व जीवन लीला करने आती है। आप वेदों व उपनिषदों के समय के ऋषियों का अनुभव और परम शान्ति व परम आनन्द को प्राप्त करने के ढंग और विधि तथा जीवन लीला को पढ़ कर समझे और महात्मा बुद्ध, महावीर, गोरखनाथ, मछन्दरनाथ यानी नाथों का ढंग, विधि व जीवन लीला को देखें। उनके समय में यह अध्यात्म पूरा रहस्य में कहा गया था। यह बात कहीं साफ नहीं कही गई है कि उनको क्या मिल गया था? वेद, उपनिषदों के समय के ऋषि तो घर-गृहस्थी में रहते हुए, जीवन का सब रस लेते हुए परम शान्ति व परम आनन्द के अनुभव की बात करते हैं। बुद्ध, महावीर इत्यादि दुनिया के जीवन को निराशा में जीते हुए इस विषय की चर्चा करते हैं। नाथों ने और ही ढंग से जीवन जिया है और इस लोक के जीवन को दुखों का घर बताया है। सुख और स्वर्ग को कहीं ओर ही बताया है परलोक में, जिसको उन्होंने शायद देखा हो या अनुभव किया हो। परन्तु वापिस आकर किसी ने नहीं बताया कि वहां कैसा सुख आनन्द है? जो यहां नहीं है।

मैं अभी हाजिर इसी जीवन में दुनिया के सब खेल खेलते हुए सुख व आनन्द के साथ स्वर्ग जैसा जीवन जी रहा हूं और अब इसी लोक में ही मुक्ति, निर्वाण, मोक्ष व परम शान्ति का अनुभव अधिक

समय में करता रहता हूं। जीवन के बाद क्या गुजरे? मुझे कुछ मालूम नहीं है, अनुमान है। जैसे कहा है –

''जा को दर्शन इत है, ताको दर्शन उत।
जा को दर्शन इत नहीं, वाको इत न उत।।''

''दौड़ा-2 दौड़िया, जब लग मन की दौड़।
दौड़ थका मन थिर भया, वस्तु ठौड़ की ठौड़।।''

मनुष्य इस परम शान्ति को पाने के लिए जीवन में पूरी दौड़-धूप करता है। जैसे जप, तप, दान, पुण्य, भक्ति, भजन, सुमिरन, सेवा, योग-साधन इत्यादि। इस प्रकार जीवन के चारों पुरुषार्थों और आश्रमों से गुजर कर आखिर में इस शान्ति पर आकर ठहरता है? राधास्वामी वाणी में इसे इस प्रकार कहा है –

''एक जन्म गुरु भक्ति कर, जन्म दूसरे नाम।
जन्म तीसरे मुक्ति पद, चौथे में निज धाम।।''

अर्थात् जीवन के कुछ भाग में गुरु का सत्संग सुनो ताकि कुछ समझ आ जाए और जीवन जीने का ढंग व काम करने का तरीका मिल जाए। जब सत्संग से समझ मिल गई और जीवन जीने व काम करने का ढंग ज्ञात हो गया तो उसके अनुसार रहने का सतत प्रयास ही नाम का जपना है। उससे खुशी और शान्ति मिलने लगेगी। इसके बाद मुक्ति की अवस्था प्राप्त हो जायेगी और यह मुक्ति की अवस्था ही निज धाम है, जिसे इसी जन्म में प्राप्त किया जा सकता है। दूसरे सज्जनों की तो मैं कह नहीं सकता, परन्तु मैं इसी जीवन में मुक्त हूं और इस परम शान्ति का अनुभव करता रहता हूं। और वहां पर चुप्पी है। जैसे राधास्वामी वाणी में कहा है –

राम रहीम करीम न केशव।
कुछ नहीं कुछ नहीं था सो था।।
जो कुछ था सो अब के भाखूं।
उनमुन सुन्न विसमाधि राखूं।।

अर्थात् अन्त में चुप और अधिक समय समाधि में रहूं। सनातन में इसे कहा है –

''ॐ शान्ति शान्ति शान्ति।''

अत: यह अनुभव का विषय है। यदि आपको इसकी चाह व इच्छा हो तो इसी जीवन में ही किसी पूर्ण अनुभवी सन्त सतगुरु की संगत करके जिसमें आपका विश्वास हो, उससे विधि सीख कर अपना खुद अनुभव करके देख लो।

शब्द

बातों मुक्ति न होइ है, छाड़ै चतुराई हो।
एक नाम जाने बिना, भूला दुनियाई हो।। (1)
वेद कतेव भवजाल है, मरि है बौराई हो।
मुक्ति भाव कछु ओर है, कोई विरला पाई हो।। (2)
काग छाड़ि बिन हंस है, नहीं मिलत मिलाई हो।
जो पै कागा हंस है, वासे मिलि जाई हो।। (3)
बसहु हमारे देशवा, जम तलब नसाई हो।
गुरु बिन रहनि न होइ है, जम धैधै खाई हो।। (4)
कहै कबीर पुकारि के, साधुन समझाई हो।
सत्त सजीवन नाम है, सतगुरु हि लखाई हो।। (5)

इस प्रकार मैंने जो अनुभव किया उसे टूटे-फूटे शब्दों में लिखा

है। परन्तु मेरा कोई भी दावा नहीं है कि यही वह शान्ति है, जिसकी चर्चा सब धर्म ग्रन्थों में की गई है। हो सकता है उनका अनुभव कुछ और हो।

(9)

मनुष्य क्या है ?

वास्तव में मनुष्य चेतन का एक बुलबुला है जो इस शरीर में खेल खेलने आता है। उसे जब तक अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान नहीं होता, तब तक वह सुख-दुख, लाभ-हानि आदि बाहर के प्रभावों से बच नहीं सकता। साधारणतया मनुष्य इस स्थूल देह, इस संसार व भौतिक पदार्थों को ही सत्य समझता है, जो कि सत्य नहीं है। वह इस संसार के खेल में आकर भूल जाता है कि वह कौन है? कहां से आया है? और उसे कहां जाना है? तो मनुष्य क्या है? इस पर विचार करते हैं।

मनुष्य शारीरिक रूप से

शारीरिक रूप से मनुष्य भोजन से बनता है और अपने माता-पिता का डुपलिकेट स्वरूप है। सबसे पहले यह अपने पिता के वीर्य में एक छोटा सा जीवाणु होता है। यह जीवाणु भोजन से बनता है और भोजन जमीन से उत्पन्न होता है। मिट्टी, जल, वायु, गर्मी आदि सब कुछ होने पर भी यदि सूर्य का प्रकाश व ऊपर के चन्द्रमा इत्यादि ग्रहों की रोशनी न मिले तो भूमि खाद्य-सामग्री पैदा नहीं कर सकती है। इसलिए सूर्य और तारागणों की किरणें जीवन है और यह

ताप और प्रकाश समस्त संसार का जीवन है। हिदू धर्म के मानने वालों ने इस संसार को पैदा करने वाले का नाम ज्योति स्वरूप या ईश्वर रखा हुआ है। यह ज्योति स्वरूप ईश्वर ताप, प्रकाश और तेज का भण्डार है। यदि शरीर में यह गर्मी है तो मनुष्य जीवित है। इस गर्मी या अग्नि के निकलते ही आदमी मर जाता है। और यदि मनुष्य अपने आपको मस्तिष्क में इकट्ठा करे तो यह प्रकाश प्रकट हो जाता है। तो बात स्पष्ट है कि मनुष्य की आत्मा प्रकाश रूपी है। लेकिन इसके अतिरिक्त इस शरीर में एक विशेष चीज और है, जो परमात्मा का निज अंश है, वह है सुरत। यह सब खेल इस सुरत का है और इसकी खोज इस युग में सन्तों ने की है। पहले के महापुरुषों ने भी इसका अनुभव किया है। उन्होंने इस सुरत को विशुद्ध आत्मा कहा है। तो मनुष्य शारीरिक रूप से इन चार बातों के मेल से पूरा मनुष्य बन जाता है - शरीर, मन आत्मा और सुरत।

मनुष्य मानसिक रूप से

मानसिक रूप से मनुष्य को जो संस्कार दिए जाते हैं, वह अपने को वही समझने लगता है। यह सब खेल संस्कारों का है। जन्म लेने के बाद जब बच्चा कुछ समझने लग जाता है, तब से ही उसको सिखाया जाता है, यानी संस्कार दिए जाते हैं। जिस जाति या कुल में पैदा होता है, उसके संस्कार दिए जाते हैं। फिर जिस धर्म या पंथ में पैदा होता है, उसके संस्कार दिए जाते हैं। जिस समाज में होता है, उस समाज के संस्कार, फिर जिस देश में होता है उस देश के नियम तथा जिस क्षेत्र में उसने काम करना होता है, उस महकमें के नियम व आचार उसे सिखाये जाते हैं। यानी मनुष्य को जाति, धर्म, समाज, देश और जिस क्षेत्र में काम करना है, वहां का संस्कार देकर

उसका वही रूप बना देते हैं। तो मानसिक रूप से मनुष्य को जैसे संस्कार देकर बनाया जाता है वैसा ही बन जाता है और अपना असली रूप मनुष्य या इन्सान का वह भूल जाता है। बाकी जो वह अपने आपको ब्राह्मण, राजपूत, हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, हिन्दुस्तानी आदि समझता है, वह तो उस जाति जिसमें वह पैदा हुआ है और धर्म - जिसमें उसके माता-पिता हैं, उन संस्कारों को देकर ही बनाया जाता है। जन्म से मनुष्य बिना किसी धर्म और पक्ष के पैदा होता है। लेकिन वह जहां पैदा होता है और जिस वातावरण में पलता है, वहां के विचारों व संस्कारों को ग्रहण करने को विवश है, वही विचार व संस्कार बाद में पक्के होकर उसके दृढ़ विश्वास के रूप में बदल जाते हैं। यह धर्म व जाति वास्तव में कुछ विचारों व रीति रिवाज के सिवाय कुछ नहीं है। तो मनुष्य का मानसिक जीवन क्या हुआ ?

"Combination of impressions and suggestions"

अर्थात् जैसे प्रभाव उसके मन पर पड़े हैं और जो संस्कार उसने सत्य समझ कर ग्रहण किए हैं, वैसा ही वह सोचेगा, समझेगा और करेगा।

उदाहरण के तौर पर हम सेना में सिपाही भर्ती करते हैं। उनमें कोई योग्य पढ़ा-लिखा लड़का, जो सिपाही होता है, उसको ऑफिसर बनने का सीधा मौका देते हैं। जब वह अपनी ऑफिसरी परीक्षा में पास हो जाये, तब उसको कुछ साल सेना में अलग रख कर ऑफिसरी की शिक्षा देते हैं ताकि उसके मन से सिपाही का विचार हट जाये और वह अपने आपको ऑफिसर समझने लग जाये। ऐसे ही किसी को मैनेजर बना दिया तो वह अपने आपको मैनेजर समझने लग जाता। किसी को चुनाव में एम.एल.ए. बना दिया और फिर मन्त्री बना दिया तो वह अपने को वही समझने लग जाता है। यानी मनुष्य अपना असली रूप भूल कर बनावटी रूप पक्का कर लेता है कि वह बहुत कुछ

बन गया है। इस प्रकार मनुष्य के मन पर जाति, धर्म, समाज, देश, पद आदि के बहुत से पर्दे पड़े हुए हैं और वह इन्हीं से बंधकर अपना जीवन बर्बाद कर देता है।

मनुष्य आत्मिक रूप से

आत्मिक रूप के अनुभव के लिए मनुष्य को ये जाति, धर्म, पद आदि के सब पर्दे हटाकर अपने आपको पहचानना है कि वह वास्तव में क्या है? जैसे कहा है -

''नर पशु वेद पशु त्रिया पशु गुरु पशु संसार
मानुष वाहि जानिए, जाहिं विवेक विचार।।''

अर्थात् कुछ सज्जन किसी बड़े पद वाले को सब कुछ मानकर उसके आगे-पीछे घूमते रहते हैं व उनकी खुशामद करते रहते हैं, उन्हें नर पशु ही समझें। कुछ वेदों के ज्ञान को न समझकर केवल वेद-ग्रन्थों की ही चर्चा या बड़ाई करते रहते हैं, वे वेद पशु है। कुछ स्त्रियों के ही भक्त होते हैं, वे त्रिया पशु है। कुछ गुरु के रूप को व सत्संग को न समझ कर केवल गुरु की ही रट लगाए रखते हैं, उन्हें गुरु पशु समझो। मनुष्य वह है जिसको सही समझ व विवेक विचार हो।

मनुष्य की सुरत यहां खेल-खेलने कुल मालिक की मौज से आती है। जब यह खेल खेलते-खेलते थक जाती है, तब यह अपने निज घर जहां से यह आई है, वहां वापिस जाना चाहती है। इसमें भी कुल मालिक या परमात्मा की मौज होती है। जैसे कहा है -

''लाई हयात ले चली कजा चले।
न अपनी खुशी आए, न अपनी खुशी चले।।''

प्राचीन समय के साधन शरीर, मन व आत्मा के थे। जैसे- किसी ने शरीर से साधु का वेष बनाया, किसी ने मन की भक्ति की तो किसी ने आत्मा का अनुभव किया। यानी अपने-अपने समय के

अनुसार साधन किए। पहले के भक्ति भाव का शब्द देखिए –

''या लकुटि और कामरिया पर, राज तिहिंपुर को तज डारूं।
आठों सिद्धि नौ निधियों का सुख।
नन्द की गाय चराय विसारू।।
कोटिक हो कुलधोत के धाम।
करील के कुंजन ऊपर वारू।।
रसखान कबहुं इन आखिन से।
ब्रज के वन बाग तडाग निहारूं।।

यह भक्ति रसखान की है जो कृष्ण भक्त हैं। वह कहते हैं कि यह कृष्ण की लाठी और कम्बल मुझे बहुत प्यारे लगते हैं। इनके लिए मैं तीन लोकों का राज त्याग सकता हूं। आगे कहते हैं कि आठ सिद्धि और नौ निधियों के सुख के बदले मैं नन्द की गायों का ग्वाला बनना अधिक पसन्द करूंगा। फिर कहते हैं करोड़ों सोने चांदी के घर छोड़कर कृष्ण भगवान् जहां रहें, उन जंगलों, झाड़ियों व उद्यानों में रहना मुझे अधिक प्रिय है।

आज भी यह अन्ध-विश्वास की भक्ति चारों तरफ देखी जा सकती है। जैसे कोई खेतों में काम कर रहा है, कोई गायें चरा रहा है, कोई सफाई कर रहा है तो कोई कुछ कर रहा है। इस अन्धविश्वास की भक्ति से परम सुख व परम शान्ति मिलने वाली नहीं है। यह पुरानी लकीर पीटी जा रही है और मैं इसे मानवता का शोषण समझता हूं। आज भी मनुष्य में समझ, बुद्धि व विवेक नहीं है। राजनैतिक शोषण तो आज के मानव ने किसी तरह बन्द कर दिया है, परन्तु धर्म के नाम पर यह मानवता का शोषण और लूट जारी है। आज के समय का जो धर्म है, उसका तो मनुष्य को ज्ञान नहीं और वह अन्धविश्वास में लुटा जा रहा है।

मैं 1962 से यह सत्संग का काम करता आ रहा हूं। मेरा रूप तरह-तरह से उनकी सहायता करता है और मैं वहां नहीं होता तो मुझे विश्वास हो गया कि यह सिद्धि-शक्ति उन विश्वास करने वालों में है। अब ये लोग मेरी तन, मन, धन से सेवा करना चाहते हैं, परन्तु जब मैं कुछ करता ही नहीं तो मेरे को क्या हक है कि मैं इनसे कुछ लूं? यही सच्चाई ये गुरु महाराज अपने सत्संगों में बता दें तो इतनी भीड़ जो आश्रमों में नजर आती है, नहीं रहेगी और मनुष्य जो अन्धविश्वास में लुट रहा है, उसको सही मार्ग की समझ आ जायेगी। इसके बाद मनुष्य अपने आपको मस्तिष्क में इकट्ठा करके, गुरु के द्वारा बताए गए मार्ग से अपने सही स्वरूप को जान सकता है। इसके लिए किसी पूर्ण अनुभवी व विवेक गुरु की अत्यन्त आवश्यकता है।

शब्द

अब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरु जुगत लखाई।।टेक।।
क्रिया कर्म आचार मैं छोड़ा, छोड़ा तीर्थ का नहाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही एक बौराना।। (1)
ना मैं जानू सेव बन्दगी, ना मैं घण्ट बजाई।
ना मैं मूरत धरी सिंहासन, ना मैं पहुंप चढ़ाई।। (2)
जो यह मूरत मुख से बोले, कर अस्नान-नहाई।
पांच टका हौं देत ठठेरे, एकहिं हों लै आई।। (3)
ना हरि रीझे जप तप कीन्हैं, ना काया के जारे।
ना हरि रीझे धोती छाड़े, ना पांचों के मारे।। (4)
दया राखि धरम को पाले, जग से रहै उदासी।
अपना सा जीव सबन का जाने, ताहि मिले अविनाशी।। (5)
सहै कुशब्द वाद को त्यागे, छोड़ै गर्व गुमाना।
सत्तनाम ताहिं को मिली है, कहे कबीर सुजाना।। (6)

(10)

मनुष्य की समस्याएं

यह समस्या मनुष्य के मन और बुद्धि से सम्बन्धित है। यह मनुष्य की अपनी ही बनाई हुई है। यदि मैं कहूं कि समस्या कुछ है ही नहीं तो इस बात को कोई स्वीकार ही नहीं करेगा क्योंकि जीवन के हर क्षेत्र में आज के मानव के लिए समस्या ही समस्या खड़ी है। जैसे व्यक्तिगत समस्या, सामाजिक समस्या, राजनैतिक समस्या, आर्थिक समस्या, वैज्ञानिकों के लिए उनकी समस्या, आध्यात्मिकों के लिए उनकी समस्या। भाव यह है कि आज का मनुष्य जीवन में चारों तरफ से समस्याओं से घिरा हुआ है।

अब मेरे लिए यदि कोई समस्या है तो वह यह है कि मुझे जीवन में कोई समस्या ही नजर नहीं आती है। मैं आज तक जो जीवन जिया हूं, बड़ा आनन्द, प्रेम व खुशी का जिया हूं। मैंने इस जीवन को एक खेल की तरह खेला है। खेल की जीत में भी खुशी मनाता रहा हूं और हार में भी वही खुशी मना ली है। अर्थात् खेल में दो ही बात होती हैं - या तो हार या जीत। मैं हमेशा आशावादी जीवन जिया हूं। मैंने हार में ही खुशी मनाई है। जैसे कहा है -

''हारे को हर मिला और जीते को मिला जम।''

अब जो हार ही गया है तो उसे अब आगे हारने का कोई डर, भय ही नहीं रहा। वह हारने के डर व भय से मुक्त हो गया। अब तो जो जीत गया है, उसे ही एक तरह के डर व भय की चिन्ता बन गई है। मैंने जो समझा और जीवन में अनुभव किया है, वह यह है कि यह अधिक समस्याएं मनुष्य ने खुद ही बना ली हैं। यह जीवन

तो अति प्यारा व एक सुन्दर खेल है। अत: समस्याओं में उलझने की तो कोई बात ही नहीं है। बस, इस जीवन का रस लिया जाए। जिस हालत में व जिस काम को करते हुए आप खुशी व आनन्द का अनुभव करते हैं तो आपका यह जीवन एक खेल है, नहीं तो यह एक खेल न होकर भार बन जाता है।

मैं पहले राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद के समय में राष्ट्रपति भवन में ड्यूटी पर था। मेरी पलटन राष्ट्रपति भवन में थी। मैं सिगनेल के महकमें में था। भारत तब आजाद हुआ था। देश की रियास्तें भारत सरकार में मिल गई थी। बड़े-बड़े राजे-महाराजे राष्ट्रपति से मिलने आते थे। राष्ट्रपति भवन में ड्यूटी के कारण राष्ट्रपति को व बड़े-बड़े लोगों को देखने का मुझे मौका मिला था। मैं अपने स्थान पर काम करते हुए बहुत ही आनन्द व खुशी का अनुभव कर रहा था। दूसरी तरफ राष्ट्रपति जो देश का सबसे बड़ा आदमी है, उनका भी जीवन मैं देख रहा था। वह चरखा भी कातते थे और बहुत ही साधारण मनुष्य की तरह अपनी दिनचर्या रखते थे। सभी उनकी सज्जनता से परिचित हैं। वह देश के महान् व्यक्ति थे। परन्तु जब उनका दमा अनियमित होता था, तब उनके जैसा दुखी कोई देखने में नहीं आता था। यानी वह दमे के रोगी थे। तो मैं यह कहना चाहता हूं कि सज्जनों। पद का और खुशी के आनन्द का आपस में कोई मेल नहीं है।

''बड़े-2 जो दिखे लोग, तिनको व्यापे चिन्ता रोग।''

(गुरु नानक)

''नानक दुखिया सब संसार, सो सुखिया जिस नाम आधार।''

''सुख कीथे न मिलदा प्यारियों, सुख सतगुरु दे चरणी।''

सतगुरु के चरण अन्दर का प्रकाश है, जिसको योगी या साधक अपने अन्दर ध्यान-योग में अनुभव करता है। यह प्रकाश का साधन

ही अन्दर में महा आनन्द का अनुभव है। लोगों ने सतगुरु के चरण यह अपने गुरु के पैर समझे हुए हैं, यह उनका भ्रम है। वास्तव में सतगुरु के चरण यहां प्रकाश है और सतगुरु अन्दर में शब्द स्वरूपी हैं, यानी सार शब्द हैं। जैसे कहा है –

''गुरु शब्द को कीजिए, बहुतक गुरु लबार।
अपने-अपने स्वाद में ठौड़-ठौड़ बट मार।।''

(कबीर)

मैंने बात मनुष्य जीवन में समस्या से शुरू की थी, तो जो मनुष्य किसी पूर्ण अनुभवी महापुरुष से ध्यान-योग सीखकर मन बुद्धि से ऊंचा यानी विचारों से ऊंचा ध्यान करता है तो उसके लिए जीवन में कोई समस्या ही नहीं है। क्योंकि यह समस्या विचारों के मण्डल यानी मन, बुद्धि तक है, जिसे मनुष्य खुद ही बनाता रहता है और जैसा सोचता है, वैसा ही होता रहता है। यह लोक संकल्प व विचारों का है। यह विचार शक्ति दोनों तरफ काम करती है – Negative और Positive अर्थात् अच्छाई और बुराई। जैसे एक वैज्ञानिक ने मनुष्य की सुख-सुविधाओं के लिए खोज की तो दूसरे वैज्ञानिक अलबर्ट आईस्टीन जैसों ने अणु बम्ब बना कर जापान के नागासाकी और हीरोसीमा जैसे नगरों को नष्ट कर दिया। यह एक मनुष्य के विचार की शक्ति है। इसलिए कहा जाता है कि ए मनुष्य! तुम हमेशा शिव संकल्प रखो, जिससे तुम्हारा और दूसरों का कल्याण होगा। वास्तव में मनुष्य अंश रूप में परमात्मा की ही शक्ति है –

''अब आदमी हमारी नजर में कुछ ओर है।
जब से सुना है यार लिबासे बसर में हैं।''

''पहचान ले अपने को तो इन्सान खुदा है।
जाहिर में है गो खाक मगर खाक नहीं है।।''

शब्द

जिसने बन्धन में फसाया है, छुड़ायेगा वही।
जाल माया-मोह का आकर कटायेगा वही।।
गर्भ में जो माता के रक्षक बना था हर घड़ी।
जागता जीता पुरुष, अब भी बचायेगा वही।।
सोच क्यों करता है और इस सोच से क्या लाभ है।
तेरी करनी लाभ का कारण बनायेगा वही।।
ध्यान कर सुमिरन भजन कर, मन में उसी की आस कर।
होकर प्रकट भीतर और बाहर, चितायेगा वही।।
तन में तेरे मन में तेरे, तेरे सांसों सांस में।
रह के अपना रूप भी तुझको दिखायेगा वही।।
घर में है वह घट में है, वह संसार के खटपट में है।
तुझको क्यों चिन्ता है, खटपट को मिटायेगा वही।।
राधास्वामी नाम ले और नाम में विश्राम ले।
नाम की धुन राग अनहद में सुनायेगा वही।।

सुख-दुख

सुख-दुख जीवन का एक अंग है। जैसे सुख है, इसी का दूसरा अंग दुख है। जो बात या काम हमारे मन के अनुकूल हो जाये, उसको हम सुख कहते हैं और जो मन के प्रतिकूल बात हो, उसको दुख की संज्ञा देते हैं। मनुष्य सुख को तो स्वीकार करता है और दुख को नकारता है यानी दुख को स्वीकार नहीं करता है। यह दोनों सुख-दुख मन के विषय हैं। जिस सज्जन को योग साधन से विवेक, अनुभव व ज्ञान हो जाता है, वह सुख-दुख के अनुभव से ऊपर निकल जाता है। जैसे जाग्रत अवस्था में आपके मन में कोई चिन्ता फिकर है, जिससे आप बहुत दुख का अनुभव कर रहे हैं। लेकिन जब आप गहरी नींद

में चले जाते हैं तो आपके दुख, चिन्ता, फिकर सब गायब हो जाते हैं। ऐसे ही योगी या साधक समाधि में मन के मण्डल से ऊपर आत्मिक मण्डल में अपनी सुरत को ले जाते हैं। वहां आनन्द ही आनन्द है। सुरत अन्तर में बहुत गजब के प्रकाश का अनुभव करती है। तो आपने दुख की बात समझ ली होगी कि यह जीवन का एक अंग है। हम किसी पूर्ण अनुभवी सन्त का सत्संग सुनकर सही समझ, विवेक व अनुभूति करके ज्ञान ले लें, फिर न कोई दुख है, न कष्ट है। बस, मुक्त अवस्था में रहकर अपने मनुष्य जीवन का रस लेते हुए सुख-आनन्द व शान्ति का जीवन जीयें।

शब्द

तजो मन यह दुख-सुख का धाम, लगो तुम चढ़कर अब सतनाम।
दिना चार तन संग बसेरा, फिर छूटे यह ग्राम।।
धन दारा सुत नाती कहियन, यह नहीं आवें काम।
स्वास दुधारा नित ही जारी, इक दिन खाली चाम।।
मशक समान जान यह देही, बहती आठों जाम।।
तू अचेत गाफिल हो रहता, सुने न मूल कलाम।।
माया नारि पड़ी तेरे पीछे, क्यों नहीं छोड़त काम।
बिन गुरु दया छुटो नाहिं या से, भजो गुरु का नाम।।
गुरु का ध्यान धरो हिरदे में, मन को राखो थाम।
वे दयाल तेरी दया विचारें, दम-दम करें सहाम।।
छोड़ भोग क्यों रोग बिसावे, या में नहिं आराम।
गुरु का कहना मान पियारे, तो पावे विश्राम।।
दुख तेरा सब दूर करेंगे, देंगे अचल मुकाम।
राधास्वामी कहत सुनाई, खोज करो निज नाम।।

(11)

मनुष्य द्वारा तलाश

मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु तक अपनी चाह (वस्तु) की तलाश में भटकता रहता है। जन्म से कुछ समझ आने तक अपनी मां या जिसको वह चाहता है, उसकी संगत में उसको तलाशता है। फिर स्कूल में पहली कक्षा से लेकर कालिज यूनिवर्सिटी तक शिक्षा में उसको खोजता है। उसके बाद नौकरी पेशे में उसे तलाशता है। फिर विवाह शादी करके पति-पत्नी में खोजता है। उसके बाद सन्तान में तलाशता है और आगे तक यह सिलसिला चलता रहता है। सन्तान की पढ़ाई-लिखाई और उनकी खुशी में वह अपनी चाह की तलाश करता रहता है। कहने का भाव यह है कि उसकी पूरी आयु ही उस अपनी वस्तु की चाह रखते हुए गुजर जाती है और इस मानव को वह वस्तु नसीब नहीं होती है। हाथ भी क्या आए? जैसे कहा है -

वस्तु कहीं खोजे कहीं, केहि विधि आए हाथ।
कहे कबीर तब पावहि, जब भेदी लिन्हा साथ।।
भेदी लिन्हा साथ में, दीन्ही वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पन्थ था, पल में पहुंचा जाय।।

तेरा सांई तुझ में ज्यूं पुहुपन में बास।
कस्तूरी का मृग ज्यूं फिर-फिर ढूंढे घास।।

तो मनुष्य जिस वस्तु की तलाश या खोज करता है, वह है खुशी या आनन्द। इसी को किसी ने परमात्मा कहा है और किसी ने आत्मा कहा है। यह वस्तु मनुष्य के अन्दर इसके मस्तिष्क में दोनों आंखों के बीच थोड़ा ऊपर के स्थान से लेकर चोटी के स्थान तक अलग-अलग स्थानों पर रहते हुए पूरे शरीर में इस प्रकार फैली हुई है जैसे दूध में घी व्याप्त रहता है। मनुष्य को इस बात का ज्ञान नहीं है, अतः वह पूरा जीवन इसे और ही जगह तलाश करता रहता है। यदि इसका कोई शुभ कर्म हो तो कोई ज्ञान-दाता सतगुरु इसको मिलता है और वह दया करके, भेद समझा कर इसको योग साधन करा कर इसके मन को एक स्थान पर एकाग्र करने की सहज विधि बता देता है। जब इसका मन स्थिर हो जाता है, इसका विश्वास बन जाता है, और इसको खुद को अनुभव करा देता है, तब इसकी भटकन छूट जाती है। क्या यह भटकन वास्तव में छूट जाती है? हां, मैं इस बात का प्रमाण हूं। गुरु के सम्पर्क में आते ही पहले ही दिन मुझे इसका अनुभव हुआ और उसके बाद मुझे दीन-दुनिया की कोई भटकन नहीं रही। वह खुशी, जिसको हर मनुष्य बड़ा या छोटा तलाश कर रहा है, वह मेरे पूरे जीवन के सफर में अनुभव में आ गई। इस खुशी व आनन्द को ही सन्तों व महापुरुषों ने आत्म ज्ञान कहा है, परमात्मा कहा है या किसी ने कुछ और कहा है। और यह खुशी हर मानव के अन्दर मौजूद है। मैं 50 साल से इसको अपने ही अन्दर अनुभव करते हुए, जीवन का आनन्द लेते हुए जीवन जी रहा हूं। और यह खुशी मनुष्य के अन्दर उसका ही निज रूप है।

शब्द

उसकी हो जुस्तजू(1) क्या, जो अपने रूबरू है।
यह जुस्तजू नहीं है, तौहीन जुस्तजू है।।

अन्धे बने हैं आबिद(2), आंखें नहीं हैं खुलती।
क्या ढूंढते हैं उसको, जो अपने रूबरू(3) है। *(1)*
दाये है अपने बाये, इसजां हैं और उस जां।
आंखे खुली तो देखा, वह अपने चार सू है।। *(2)*
क्या किलो-ख्याल(4) में है, क्या फर्जी हाल में है।
जो है जुबां पे बैठा, क्या उसकी गूफ्तगू(5) है।। *(3)*
दिलदार और दिलबर, दिलकश है दिलरूबा(6) है।
खुर्शिद(7) ऊ अगर है, वह मेरा माहऊं है।। *(4)*
वह दिल में खुद है कायम, दिलघर है जिसका दायम।
दिल को संभल के देखा, वह दिल में मूलमू(9) है।। *(5)*
राधास्वामी की मेहर से, कर सुगल-जिकर-सुलता(10)।
पहुंचेगा अपनी मसकिन(11), जहां तेरी चुस्तजू(12) है।। *(6)*

(1) तलाश, (2) पुजारी, (3) सामने, (4) वाद-विवाद, (5) चर्चा, (6) सूर्य, (7) चांद, (8) टिका हुआ, (9) मौजूद, (10) सुरत-शब्द योग, (11) मंजिल, (12) इच्छा।

(12)

मनुष्य का सच्चा हितैषी

मनुष्य जीवन जन्म से लेकर अन्त तक रहस्यमय है। प्राकृतिक नियम के अनुसार माता-पिता इस संसार में अपनी सन्तान को जन्म देते हैं और उनका पालन-पोषण करते हैं। परन्तु बड़े होने पर बच्चे अपने माता-पिता के प्रति अपने कर्त्तव्य को भूल जाते हैं और वे उनके

दु:ख का कारण बन जाते हैं। मैंने इस सन्तान-उत्त्पत्ति के विषय में **'सुखी जीवन का रहस्य'** नामक पुस्तक लिखी है, जिसमें लिखा है कि मां जैसी इच्छा करे, वैसी सन्तान उत्पन्न कर सकती है और इस सन्तान से होने वाले दुख से काफी हद तक मुक्ति पा सकती है।

हर मनुष्य इस संसार में एक मिशन लेकर आता है और वह जो काम करने आता है, उसे अवश्य पूरा करता है। सब हालात उसके अनुकूल बन जाते हैं और वह जो भी मिशन लेकर आता है, उसके पूरा होने पर चला जाता है। इस जीवन के सफर में उसको जितने भी लोग मिलते हैं, वास्तव में वे सभी जीवन सफर के मुसाफिर हैं। जैसे कहा है -

''मुसाफिर की मुसाफिर से सफर में दोस्ती कैसी?''

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। यह शुरू से ही समाज में पैदा होता है और इसी में रहते हुए ही विद्या, ज्ञान, ध्यान, कमाई इत्यादि करते हुए सब खेल यहां ही खेलता है। वास्तव में जो भी जीव मनुष्य के सम्पर्क में होते हैं तो मनुष्य यह चाहता है कि वे सब उसकी बात माने और उसकी आज्ञा में रहे। मनुष्य में पांच मुख्य कमजोरियां हैं - काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार। इनमें अहंकार विशेष है। जिसके लिए नानक देव जी ने ऐसा कहा है -

''होमे दृग रोग हैं और दारू भी इस माहि।''

अब इस जीवन के सफर में जितने भी लोग इस मानव के साथी हैं, सभी इसको दुखी देखना चाहते हैं, क्योंकि दुखी आदमी ही सबका आज्ञाकारी हो सकता है, नहीं तो मनुष्य का अहंकार उसे नीचा रहने नहीं देता। परिवार से लेकर राज दरबार तक सब इसको अपने नीचे और आज्ञाकारी चाहते हैं। जैसे राजनेता दुखी या अभावग्रस्त मनुष्य को ही अपने साथ लेंगे। अगर वे दुखी नहीं हैं तो यत्न करेंगे

कि मनुष्य को परिवार से या गांव के लोगों से अलग फाड़ कर उसको किसी उलझन में डाला जाये ताकि वह पुलिस, कोर्ट, कचहरी में राजनेताओं से सहायता मांगे। नेताओं को वोट के लिए चाहे कुछ भी करना पड़े। वे चाहते हैं कि मनुष्य को दुखी करके परिवार, गांव व समाज से अलग किया जाये। उसका नियम ही यह है कि फूट डालो और राज करो। इस बात से स्पष्ट है कि राजनेता मनुष्य को दुखी देखना चाहते हैं। और अगर वो दुखी नहीं हैं तो उन्हें किसी तरह दुखी करना चाहते हैं।

अब रही वैद्य डाक्टरों की बात सो उनका भी यही पेशा है कि लोग बीमार हों, तभी उनका काम चलेगा। रही गुरु, पीर, पण्डित, पुरोहित, ज्योतिषियों की बात तो वे भी दुखी मनुष्यों से ही अपना पेशा चलाते हैं और आश्रमों में जो भीड़ इकट्ठी होकर उनकी शोभा बढ़ाती है, वो दुखी लोग ही गुरु पीरों के द्वार पर जाकर सिर झुकाते हैं। जो मनुष्य हर तरह से सुखी हैं तो उनको क्या जरूरत है कि वो गुरुओं, पण्डितों व पुरोहितों के द्वार पर जाकर सिर झुकायें? अगर कोई दुखी नहीं है तो उसको यह संस्कार दिया जाता है कि भाई इस दुनिया में कोई सुख नहीं है। यहां किसी को तन का दुख, किसी को मन का दुख तो किसी को धन का दुख है। यानी चर्चा दुख की और पाप की ही होगी। ज्योतिषी किसी तरह मनुष्य को संस्कार देकर कहेगा कि भाई। आप पर तो शनि की दशा है और कोई भारी कष्ट आयेगा। इस प्रकार यह सब अपने पेट और मान-सम्मान के लिये लोगों को घटिया संस्कार देकर उन्हें दुखी करने की बात है। अब इन सबके बारे में आप यह बात समझ लें कि जो भी आपको घटिया संस्कार देता है, जिसमें किसी तरह का भय, चिन्ता या घटिया विचार हो तो यह सब आपको दुखी करने के लिए ही है।

फिर मनुष्य का सच्चा हितैषी कौन है?

सतगुरु, जो सत का ज्ञान दाता होता है। वह मनुष्य को ज्ञान देकर अभय-दान देता है। राधास्वामी वाणी में कहा है -

सतगुरु राखा जीव का, जीव न जाने भेद।
गुरु चरित्र समझे नाहि, रहे कर्म की खेद।।

कबीर कहते हैं -

गुरु मिले तो भ्रम नसाहिं।

संशय काल शरीर में, जारि किया सब धूर।
काल से बचे दास जन, जिन पर दयाल हजूर।।
शिष्य को ऐसा चाहिए, गुरु को सर्व सब दे।
गुरु को ऐसा चाहिए, शिष्य का कछु ना ले।।''

एक बार मैं सत्संग देने के लिए भिवानी गया हुआ था। वहां S.E. जिले सिंह सांगवान जी को सरकारी कोठी V.I.P. कॉलोनी में मिली हुई थी। उन्होंने सत्संग में सभी बड़े-बड़े ऑफिसरज को बुलाया हुआ था। जब मैं सत्संग देने लगा तो मैंने उन बड़े-बड़े अधिकारियों व उनकी पत्नियों को वहां बैठे देखा। तब मैंने कहा - सज्जनों ! होस्पिटल बीमारों के लिए होता है, अगर स्वस्थ मनुष्य अस्पताल में इकट्ठे हो जायें तो वे डाक्टरों को काम नहीं करने देंगे। मेरा भाव था कि सत्संग भी मनुष्य के लिए किसी अभाव के कारण ही होता है। आप सब अच्छे सज्जन नजर आते हैं और जीवन में सब तरह से सुखी प्रतीत होते हैं। अतः जो कोई कुछ अभाव महसूस करे या जो कोई कुछ चाह रखता हो, वे ही यहां बैठे, बाकी अपना समय न गवाएं। मैं जानता था कि सुखी मनुष्य बहुत कम है, क्योंकि संस्कार ही हमको घटिया मिले हुए हैं।

मेरा कहने का भाव यह है कि सतगुरु ही इस मनुष्य को सुन्दर संस्कार देकर सुखी करता है और वही सच्चा हितैषी है जो मनुष्य को सुखी जीवन जीने का संस्कार देता है और कुछ मुआवजा या बदला नहीं चाहता है। शेष सब यहां बदला चाहते हैं व अपना स्वार्थ पूरा करते हैं।

(13)

मेरे जीवन का अनुभव

गुरु कृपा से मैंने अपनी जीवन लीला में बड़ा लम्बा खेल खेला है। मैं अब अस्सी साल का हो गया हूं। यहां मेरा भाव आध्यात्मिक जीवन से है। पहले एक कहानी लिखता हूं, जिसे मैंने कहीं पढ़ा या सुना है। इस कहानी से आप मेरा आध्यात्मिक जीवन ठीक समझ सकेंगे।

कहते हैं कि कोई गुरु महाराज अपना योग साधन करके उठा और उसने अपने चेलों को बताया कि आज किसी समय एक खास हवा चलेगी और जिनको यह हवा लगेगी, उनकी बुद्धि खराब हो जायेगी। चेलों ने गुरु जी की इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। परन्तु गुरु जी ने जमीन के अन्दर अपनी गुफा में जाकर खुद उस हवा से अपना बचाव कर लिया। जब हवा खत्म हो गई, तब गुरु जी गुफा से बाहर आए। उन्होंने देखा कि सब चेलों पर उस हवा का असर हो चुका है, क्योंकि सब उल्टी-सीधी बातें या काम कर रहे थे। यह हालत देखकर गुरु जी उन्हें समझाने लगे यानी ज्ञान देने लगे।

तब सब चेले बहुत हैरान हुए और कहने लगे कि महाराज जी, आज क्या बात है? आपने कोई नशा तो नहीं कर लिया, जो ऐसी बातें कर रहे हो? अब यदि उस हवा के समय या तो गुरु और सब चेले गुफा में होते तो उन पर हवा का असर नहीं होता या सब ही बाहर रहते, जिससे सब एक जैसे हो जाते। अब गुरु तो चेलों को सही समझ व ज्ञान देना चाहते हैं और चेले कहते हैं कि गुरु जी, आपने आज कोई नशा वगैरा तो नहीं कर लिया है। जो ऐसी बात कर रहे हो यानी चेलों को वह ज्ञान या समझ उल्टा लग रहा है। और यही हालत मेरे साथ घटित हो रही है।

मैंने 1962 में यह सत्संग का काम अपने गांव और दूसरे गांव में जा जाकर कराना शुरू किया था। लोगों के साथ तरह-तरह के चमत्कार व नई-नई घटनाएं उनके ही आस-विश्वास से घटती रही। जब मैं अपने गुरु महाराज पण्डित फकीरचन्द जी के पास दर्शन करने जाता तो उनको इन घटनाओं व चमत्कारों के बारे में जो मेरे साथ या सत्संगियों के साथ घटित होती थी, बताता था। वह मुझे यह रहस्य बताते रहते थे कि यह सब आस-विश्वास की बाते हैं। कोई गुरु या इष्ट कुछ नहीं करता है। यह शक्ति भक्त के मन में है, परन्तु जीव भ्रम और अज्ञान के कारण यह रहस्य समझ नहीं सकता है। हजारों लाखों में कोई एक होता है, जो शान्ति चाहता है, बाकी सब सिद्धि, सफलता, खुशी व आनन्द के इच्छुक हैं। अब मैं आपको यह बताना चाहता हूं कि मेरे सत्संगों से उस परम आनन्द व शान्ति को इस जीवन में ही अनुभव करने वाले कितने लोग सफल हुए हैं?

प्यारे सज्जनों ! जहां तक सत्संगियों के विश्वास की बात है, उसमें तो बहुत लोगों को लाभ हुआ है। लोग प्रसाद ले जाते हैं और जो इच्छा लेकर आते हैं, पूरी हो जाती है। और बहुत लोगों को सांसारिक

कार्यों में सफलता मिली है, जो उन प्रेमी भाई, बहन और बेटियों के ही विश्वास का फल होता है। मेरा तो एक आशावादी संस्कार ही देने की बात है। रोज नए-नए चमत्कार सत्संगियों के साथ होते हैं। जैसे मेरा रूप प्रकट होकर होने वाली बात पहले ही उस प्रेमी को बता देता है और समय पर वही बात घटित हो जाती है। अब मुझे 4.1.2004 को जीन्द, हरियाणा में सत्संग देने जाना था। वहां एक स्त्री है, जो मेरे प्रति विश्वास रखती है। वह कहती है कि जब मैं सुबह-सुबह साधन करती हूं तो आप आकर मुझे सफेद रंग के प्रकाश में तैराते हैं। इसने सन्त ताराचन्द जी महाराज से नाम लिया हुआ है। मैंने भिवानी में कभी सत्संग दिया था, इसका मेरे प्रति विश्वास बन गया और इसमें प्रकाश खुल गया। यानी इसे प्रकाश का अनुभव होने लगा। उसने मुझे कल फोन दिया कि आप 4 जनवरी को आश्रम में सत्संग देकर मेरे घर पर भी चरण रखना। मैंने कहा - समय होगा, तो देखूंगा। आज सुबह पुनः उसका फोन आया कि सुबह साधन में आप मेरे घर आए। सर्दी ज्यादा थी। अतः मैंने आपको कम्बल ओढ़ाया और कुछ बात करके आप चले गए। समाधि से उठकर देखा तो आप यहां नहीं थे। इसी प्रकार कई मरने वालों ने पहले ही अपने परिवार के लोगों को कह दिया कि कप्तान लालचन्द जी महाराज मुझे कह गए हैं कि उस दिन वह मुझे लेने आयेंगे और ठीक उसी ही दिन उसने कहा कि अब वह लेने आ गए हैं, मैं जा रहा हूं और वह मर गया। इस तरह की रोज नई-नई घटनाएं सत्संगियों के साथ घटती रहती हैं और वे मुझे बताते रहते हैं और मुझे कुछ मालूम नहीं है। मैं कहीं आता-जाता नहीं हूं। यह सब खेल उनके विश्वास व मन की पवित्रता के कारण होता है, जिससे होने वाली घटना उनको पहले ही मालूम हो जाती है। यह सब मनुष्य के ही मन की शक्ति और उसके आस-

विश्वास का फल है, जो मैं समझता हूं। हो सकता है किसी गुरु-पीर में ऐसी शक्ति हो, परन्तु मेरे में नहीं है।

अब यही बात जब मैं सत्संगों में उन प्रेमियों को बताता हूं, जिनमें मेरा रूप प्रकट होकर उनकी मदद करता है, तो वे मेरी बात नहीं मानते हैं और कहते हैं कि आप सब कुछ कर सकते हैं। आप हमें बहकाते हैं कि मैं कुछ नहीं करता हूं। आप सब कुछ करते हो। आपने मेरा यह किया, वह किया आदि-आदि।

दूसरी बात जब मैं यह कहता हूं कि भाई, यह दुनिया बहुत प्यारी है। इसको परमात्मा ने बनाया है। अत: उसकी बनाई हुई दुनिया दुख का स्थान नहीं हो सकती। जैसे परमात्मा पूर्ण है, यह दुनिया भी पूर्ण है। क्योंकि पूर्ण से जो निकलेगा, वह भी पूर्ण होगा। इस लोक का जीवन मैं स्वर्ग जैसा जी रहा हूं और परलोक का अनुभव भी यहां इसी जीवन में कर रहा हूं। तो मेरी यह बात अकेली पड़ रही है। क्योंकि अधिकतर महात्मा यही कह रहे हैं कि इस दुनिया में तो दुख के सिवाय कुछ है ही नहीं, अत: परलोक चलो। वहां सब कुछ है, जो यहां आपको नहीं मिला है।

मैं कहूं कौन से भाई, कोई मेली नजर न आई।
जो बातें सन्त बतलाई, काहू से मेल न खाई।।
त्रिलोकी सभी सुनाई, चौथे का मर्म न गाई।
जिस चौथा लोक जनाई, जो अचरज करते भाई।।
कोई माने न बहुत मनाई, अब क्यों कर करूं लखाई।
मैं समझ यही चित लाई, बिन मेहर न श्रद्धा आई।।
जो सतगुरु होय सहाई, तो सभी बात बन आई।
ताते यह गिनत मिटाई, राधास्वामी चुप रहाई।।

अब यह सोचने की बात है। आप बुद्धिमान् हो। या तो उस पागलपन वाली हवा का असर मुझ पर हो गया है या इन सज्जनों

पर जो यह सोच रहे हैं कि यह दुनिया दुखों का घर है। सुख तो परलोक में है, जिसको मरने के बाद किसी ने वापिस आकर आज तक नहीं बताया है कि अब वह कहां है? और वहां का क्या-क्या सुख आनन्द है? सज्जनों यह विषय अनुभव का है, बातों का नहीं है। मैं तो इस लोक के स्वर्गमय जीवन के साथ-साथ उस परलोक के सुख का या उससे कहीं अधिक हर समय रहने वाले आनन्द का और लगभग अधिक समय रहने वाली शान्ति का अनुभव अभी इसी जीवन में कर रहा हूं। आगे की कह नहीं सकता कि मेरे साथ क्या गुजरे? और न यह दावा करता हूं कि जो मैंने समझा या अनुभव किया है, यही सच्चाई है। जिस भाई-बहन या बेटी को मुमुक्षा या इस विषय को जानने की सच्ची लगन हो, वह खुद अपना अनुभव करके देख लें। मेरी बात को सच न मानो। हो सकता है मुझे ही वह पागलपन वाली हवा लग गई हो। जैसे सावन के अन्धे को सब जगह हरा ही हरा नजर आता है। खुद का अनुभव ही हम सच मान सकते हैं। दूसरे की बात तो उसके अनुभव की है। यह तो देखने या कहने की बात ही नहीं है, क्योंकि विषय अनुभव का है।

शब्द

मरहम होय सो जाने साधो, ऐसा देश हमारा।। (टेक)
वेद कतेब पार नहीं पावे, कहन सुनन से न्यारा।
जात वरण कुल क्रिया नाहि, सन्ध्या नियम आचारा।।

बिन जल बून्द पड़त जहां भारी, नहीं मीठा नहीं खारा।
सुन्न महल में नौबत बाजे, किंगरी बीन सितारा।।

बिन बादल जहां बिजली चमके, बिन सूरज उजियारा।
बिना नयन जहां मोती पोवें, बिन सुर शब्द उचारा।।

जो चल जाये ब्रह्म तहां दरशे, आगे अगम अपारा।
कहें कबीर तहां रहन हमारी, बूझे कोई गुरमुख प्यारा।।

इस शब्द में कबीर साहब ने यही बात कही है कि जिसको मरहम यानी अनुभव होता है, वही इसे जान सकता है।

जो मैं ऊपर अपने जीवन के अनुभव की बात बता रहा था तो कुछ प्रेमी भाई, बहन ऐसे हैं जो अन्तर का अनुभव कर रहे हैं। परन्तु वे अनुभव तो कर रहे हैं, लेकिन उन्हें अभी सही समझ, विवेक और ज्ञान नहीं है अनुभव के साथ सही समझ, पूरा विवेक और ज्ञान होना बहुत जरूरी है। केवल अनुभव से मन तो ठहर जाता है, अन्दर वह शान्ति भी किसी हद तक रहती है परन्तु काम पूरा ज्ञान से बनता है।

शब्द

जीया मत मार मुवा मत लायो, मास बिना मत आइयो रे।। (टेक)
परले पार एक बेल का बिरवा, वा के पात नहीं हैं रे।
होत पात चुग जात मृगवा, मृग के सीस नहीं हैं रे।।

धनुष बाण ले चढ़ा पारधी, धनुवा में परच नहीं है रे।
सर सर बाण तका तक मारे, मिरगा के घाव नहीं हैं रे।।

उर बिन खुद बिन चरण चोंच बिन, उडन पंख नहीं जारे।
जो कोई हंसा मार लियावे, रक्त मांस नहीं ताके रे।।

कहे कबीर सुनो भाई साधो, यह पद अति दुहेला रे।
जो इस पद का अर्थ लगावे, वही गुरु हम चेला रे।।

कबीर साहब ने यह शब्द रहस्य में कहा है। इसको केवल सुरत-शब्द का योगी ही समझ सकता है अर्थात् मन को वश में करने के लिए योग साधन में साधक जिस यत्न का अनुभव करता है, वही इन पहेलियों को समझ सकता है।

मैंने यह बातें सीधी, साफ लिखी हैं और यही सत्संगों में बताया करता हूं। क्योंकि अब समय बदल गया है और मनुष्य के पास इतना समय भी नहीं है कि वह इन पहेलियों के ढंग से ज्ञान को प्राप्त करे। मेरी समझ के अनुसार तो न तो पहले के महापुरुष इस आत्मज्ञान व तत्व ज्ञान का रहस्य खोलना चाहते थे और न आज के सन्त महात्मा ही इसे खोलना चाहते हैं।

शब्द

कर्म गति टारी नाहि टरे।। (टेक)
मुनि वशिष्ठ से पण्डित ज्ञानी, सोध के लग्न धरी।
सीता हरण मरण दशरथ को, वन में विपत्त परी।।

कहां वह फन्द कहां वह पारधी, कहां वह मृग चरी।
सीता को हर ले गया रावण, सोने की लंक जरी।।

नीच हाथ हरिश्चन्द्र बिकाने, बालि पाताल धरी।
कोटि गऊ नित दान करते, नृप गिरगिट योनि परी।।

पाण्डव जिनके आप सारथि, तिन पर विपत्त परी।
दुर्योधन को गर्व घटायो, यदुकुल नाश करी।।

राहु केतु और भानु चन्द्रमा, विधि से जोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, होनी हो के रही।।

इस कर्म गति के शब्द से मुझे यह समझ आ गई कि जो होना है, वह तो हो ही जायेगा। तो ज्ञान यह है कि कोई भी अच्छी या बुरी घटना घट जाये, तब हमको रोने-धोने या अफसोस करने की बजाय उसकी खुशी मना लेनी चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं कि हम यत्न या किसी घटना को टालने का प्रयास न करें। हमें हमेशा हिम्मत व हौंसला रखना चाहिए। हाथ पर हाथ न धर कर कुछ काम करना चाहिए और हमेशा आशावादी रहना चाहिए। परन्तु जब कोई घटना अच्छी या बुरी घट जाए तो उसकी खुशी मना लेनी चाहिए।

जब से मेरा आध्यात्मिक जीवन शुरू हुआ, तब से मेरा हर काम खेल में बदल गया। अत: कोई समस्या सामने आई ही नहीं। बात समझ में आ गई कि जो भी शुभ या अशुभ होता है, वह मेरे ही कर्मों का फल है। दोनों हालतों के अन्त में खुशी मना लेता हूं, क्योंकि दोनों ही जीवन के अंग हैं। खुशी और आनन्द की हर समय वर्षा होती रहती है और एक मस्ती सी बनी रहती है जो लिखने या कहने में नहीं आती है। बस, अनुभव करता रहता हूं। जैसे कहा है-

''हर जगह मौजूद है, पर नजर आता नहीं।
योग साधन के बिना, उसको कोई पाता नहीं।''

''घट में है सूझत नहीं, लानत ऐसी जिन्द।
नानक इस संसार को, हुआ मोतिया बिन्द।।''

अर्थात् समस्थिति बनी रहती है। सुरत ऊपर की तरफ सहज में खिंची रहती है। कुछ करने धरने की बात नहीं है। किसी भी बाहर की हालत की तरफ ध्यान ही नहीं जाता है। बस, अपने निज रूप में मस्त रहता हूं।

सहजे ही धुन होत है, हर दम घट के माहि।
सुरत शब्द मेला भया, मुंह की हाजत नाहि।।

माला फेरू न हरि भजू, मुख से कहूं न राम।
मेरा राम मुझे भजे, तब पाऊं विश्राम।।

(14)

नाम या साधन का नया अनुभव

प्यारे सज्जनों ! मेरे साथ जो साधन की विधि व नाम की घटना घटित हुई, वह मेरे पढ़ने या सुनने में नहीं आती है। मुझे इस बात का कोई अहंकार नहीं है, परन्तु मैं अपने प्यारे सज्जनों को यह बताना चाहता हूं। हो सकता है कि और बहुत से भाईयों के साथ यह विधि या घटना घटी हो।

जब मैं इस नाम या भजन की इच्छा से अपने गुरु महाराज पण्डित फकीरचन्द जी के पास पहुंचा तो वह समाधि में बैठे हुए थे। और मैं उनके सामने बिना किसी आसन के नीचे बैठा हुआ था। उनके अन्दर से जो Radiation या विकिरण की धारा निकल रही थी, वह मुझसे टकराई और मेरी खोपड़ी के अगले भाग में जहां बच्चों का तालवा टीप-टीप करता है, वहां मुझे अवर्णनीय आनन्द का अनुभव हुआ। जब मेरे गुरु महाराज जी समाधि से उठे तब मैंने उनसे पूछा कि मैं ऐसा-ऐसा यहां पर अनुभव कर रहा हूं। क्या यही भजन है? उन्होंने कहा - हां, यही भजन है और यही नाम है, जो आप सुन रहे हैं। परन्तु इसे हर समय मत करना। सुबह-सुबह थोड़े समय कर लेना।

हमारे अध्यात्म के साधन, आज्ञा-चक्कर, जहां औरतें बिन्दी लगाती हैं, वहां से लेकर जहां माथे और सिर के बाल मिलते हैं, जिसको राधास्वामी पंथ में भंवर गुफा, सचखण्ड या सतलोक कहते हैं, वहां तक और उससे आगे चोटी के स्थान तक किए जाते हैं। मेरा यह साधन नई जगह से शुरू हुआ, जो आम साधक के साथ ऐसा नहीं होता है। इस बात से मैं यह समझता हूं कि कोई भी साधक यदि विचारों या संकल्प को छोड़ जाए तो वह सीधा सूक्ष्म-मण्डल के साधनों के स्थानों से आगे कारण मण्डल में छलांग लगा सकता है। जैसे मेरे साथ यह घटना घटी और सीधा अलख, अगम और अनाम में मेरा यह सार शब्द का साधन बन गया और 1956 से लेकर आज तक मेरा वही एक अनुभव चल रहा है, जो अब हर समय बना रहता है।

तो नई बात यह हुई कि 15 या 20 मिनट में ही कुछ सुमिरन, ध्यान किए बिना ही, कुछ आसन लगाए बिना ही मुझे माथे के अन्दर आज्ञा चक्र, त्रिकुटी, सुन्न, महासुन्न, भंवरगुफा या सतलोक से आगे सीधा अलख, अगम और अनाम के स्थानों पर सार शब्द का अनुभव शुरू से ही हो गया। हां, समझ, सही विवेक और ज्ञान मुझे परम दयाल जी यानी मेरे गुरु पण्डित फकीरचन्द जी महाराज के सत्संगों और उनकी संगत से हुआ। कुछ, बाद में सत्संगियों के नए-नए चमत्कार जो उनके साथ घटित हुए, उनसे होता गया। केवल अनुभूति पहले ही दिन गुरु जी के दर्शन से हो गई थी। यह खास नई घटना थी।

सच्चाई यह है कि ये जो अलग-अलग स्थानों के घण्टा, शंख, ओम्, रारंग, सारंग, सोहम्, सत् वीणा आदि के शब्द जो राधास्वामी वाणी में लिखे हुए हैं और जिन्हें मैं सत्संगियों से सुनता रहता हूं, ये मेरे अनुभव में कभी नहीं आए। मैंने दो-चार बार इन्हें सुनने का प्रयत्न

भी किया, लेकिन मैं नहीं सुन सका। बस शुरू-शुरू में महाराज जी के दो-चार सत्संगों में अन्दर हल्के प्रकाश में सत्संग में बैठे हुए ऐसे अनुभव किया कि सफेद दाढ़ी और सफेद कपड़े पहने हुए सन्त बैठे हैं और मैं उनको सत्संग करा रहा हूं। गुरु जी आते हैं और मुझे शाबाशी देते हैं। यह बात जब मैंने अपने गुरु महाराज जी को बताई तो उन्होंने कहा कि यह मन माया का खेल है। तुम अपने उस साधन से नीचे मत आओ। उसके बाद आज तक मुझे कभी कोई नजारा नहीं आया है और न कभी गुरु जी का रूप या कोई और रूप, रंग या शक्ल, सूरत मेरे सामने आए हैं। केवल एक ही धारा का अनुभव बना रहता है।

तो प्यारे सज्जनों ! मैं यह बात बताना इसलिए आवश्यक समझता हूं कि यदि कोई साधक शुरू से ही विचारों से ऊपर निकल जाए तो वह सीधा सूक्ष्म मण्डल से कारण में जा सकता है। इसके लिए इन नीचे के साधनों की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु यह साधन वक्त सन्त सतगुरु के अधीन होने की बात है। बिना किसी पूर्ण अनुभवी महापुरुष की सलाह के साधन करना ठीक नहीं है। साधन का अनुभव भी मनुष्य की प्रकृति और संस्कारों के अनुसार होगा।

''बिना गुरु घट में राह न चलना।
राह में विघ्न अनेकन मिलना।''

अर्थात् बिना गुरु की सलाह के साधन करने से दिमाग का सन्तुलन बिगड़ जाता है। और एक बार सन्तुलन बिगड़ने पर इसका इलाज असम्भव हो जाता है।

''गुरु को सिर पर राखिए, चलिए आज्ञा माहि।
कहें कबीर सुन साधवा, तीन लोक भय नाहि।।''

राधास्वामी वाणी में वैराग का एक शब्द है, जो इस प्रकार है-

चलो री सखी आज पिया से मिलाऊं।
तन-मन-धन की प्रीत छुड़ाऊं।।
पुत्र कलत्र जाल छुड़ाऊं।
सुन्न-मण्डल धुन अजब सुनाऊं।। (1)

गगन मण्डल पर जाय बैठाऊ, तीन लोक का राज दिलाऊ। त्रिवेणी तीर्थ परसाऊं, मन माधो से खूंट छुड़ाऊं। (2) काल चक्र से तुरन्त बचाऊं, कर्म काट निज घर पहुंचाऊं। महासुन्न और भंवन गुफा से, सतपुरुष दीदार कराऊं।। (3) दीन दूरबीन पुरुष एक ऐसी, अलख अगम के पार समाऊं। राधास्वामी पद हम जाना, कहन सुनन का लगा ठिकाना।। (4)

यदि किसी को यह वैराग हो जाए और वह सब प्रकार के विचार, संकल्प विकल्प को छोड़ जाए तो वह सूक्ष्म लोक के साधन जिसमें साधक तरह-तरह के शब्द व लीला का अनुभव करता है और पूरा जीवन इन आश्रमों व रंग, रूप, शक्ल तथा कई तरह के चमत्कारों में उलझा रहता है, इनसे ऊपर सार शब्द में छलांग लगा सकता है, ऐसा मैंने समझा है। परन्तु मेरा कोई दावा नहीं है कि यह ही विधि या साधन का अनुभव दूसरों के लिए सही होगा। क्योंकि मनुष्य की प्रकृति व संस्कार भिन्न-भिन्न हैं।

(15)

मानवीय गुण

1. शरीर और मानसिक ब्रह्मचर्य का पालन करें। अपने वीर्य को स्वाद के लिए नष्ट न करें, क्योंकि यही जीवन शक्ति है।
2. हमेशा शिव संकल्प रखें और आशावादी रहें कि ईश्वर जो करता है, अच्छा करता है।
3. अपने मन व इन्द्रियों को वश में रखें और इसके लिए योग का सहारा लें।
4. अपनी गरज (स्वार्थ) के लिए किसी का मन न दुखाएं।
5. सहनशील बनें अर्थात् अपने मन के प्रतिकूल बात को सहन करें।
6. दूसरों के काम आएं तथा मन में दया, क्षमा, सेवा तथा प्रेम-भाव रखें।
7. दूसरों के गुणों पर दृष्टि रखें, दोषों पर नहीं।
8. दूसरों के साथ वही व्यवहार करें, जो हम अपने साथ चाहते हैं।
9. शुभ कर्म वह है, जिससे अपने को और दूसरों को सुख मिले, सहारा मिले व शान्ति मिले।
10. शुद्ध कमाई अपने परिश्रम की हो। **''जैसा अन्न वैसा मन''।**
11. बेकार न रहें, कुछ न कुछ काम करें या आराम करें या नाम जपें।
12. अपना कमा कर खायें, दूसरों की कमाई पर निर्भर न रहें।
13. निस्वार्थ भाव से जरूरतमन्द की सहायता करें।

14. हमेशा मीठा बोलें।
15. किसी दूसरे के काम में दखल न दें तथा दूसरों के भेद की बातों को प्रकट करने से बचें।
16. अपने दोषों को देखें, यही मनुष्यता के मार्ग में पहला कदम है।
17. जो अपने आप को धोखा नहीं देता, वही सच्चा इन्सान है।
18. इन्सानियत रूहानियत (अध्यात्म) का दरवाजा है।
19. कर्म शरीर से होता है, भक्ति मन से और ज्ञान मस्तिष्क से तथा इन तीनों बातों को प्राप्त करना और जीवन का अंग बनाना मानवता है।
20. छोटों पर दया करें। बराबर वालों से प्रेम करें। बड़ों का आदर सत्कार करें और विरोधी विचारों वालों से उदासीन रहें।
21. मनुष्य वह है जो पण्डितों की सहायता करें और अत्याचारी को दंड देने की शक्ति रखता हो।
22. ध्यान रखिये कि हृदय की उदारता और प्रसन्नचित होना ही मनुष्य का लक्षण है। कांपता और मुरझाया हुआ चेहरा तथा शारीरिक और मानसिक निर्बलता मानवीय गुण नहीं है।
23. सतगुरु के वचन को मानना और अमल करना ही सच्चा प्रेम और सच्ची भक्ति है।
24. श्रद्धा और विश्वास का रूप समय के अनुसार बदलता रहता है।
25. सुमिरन-सुमिरन का अर्थ है - किसी को बार-बार स्मरण करना। हर सम्प्रदाय में सुमिरन का महत्व है। इससे मन साफ होता है और मन एकाग्र करने के लिए यह सहज तरीका है और आत्मिक अनुभव के लिए पहली सीढ़ी है।

26. शरणागत अवस्था - जब मनुष्य जीवन की यात्रा करता हुआ सफलता और असफलता दोनों प्रकार के अनुभवों से जीवन गुजारता हुआ देखता है कि यह तो आती-जाती है, तब वह आत्मिक शान्ति के लिए किसी ऐसी जगह जाना चाहता है, जहां उसको सफलता व असफलता का दुख न हो, तब उस अवस्था का नाम शरणागत होना है।

यह जो मनुष्यता के नियम लिखे हैं इनको प्रत्येक धर्म में विश्वास रखने वाले पालन करके जीवन को सुन्दर बना सकते हैं। संसार के किसी धर्म, समाज व जाति के मनुष्य के लिए इन गुणों के पालन में कोई रूकावट नहीं है।

।। राधा स्वामी ।।